अर्थ
या अनर्थ

- दत्तोपंत ठेंगड़ी
- डा० मुरलीमनोहर जोशी

- हिन्दू अर्थशास्त्र
- ऋण का बोझ
- डंकेल प्रस्ताव

अर्थ या अनर्थ

दत्तोपन्त ठेंगड़ी
डा० मुरलीमनोहर जोशी

सुरुचि प्रकाशन
केशव कुञ्ज, नयी दिल्ली-११००५५.

प्रकाशक: सुरुचि प्रकाशन
(सुरुचि संस्थान का प्रकाशन विभाग)
केशव कुंज, झण्डेवाला,
नयी दिल्ली–११००५५

द्वितीय संस्करण: (विक्रम संवत् २०५९)
(२००३ ई०)

मूल्य: ८ रुपये

मुद्रक: स्पीडो ग्राफिक्स, दिल्ली–५१

प्राक्कथन

आर्थिक क्षेत्र में देश दिनोंदिन ऋणजाल में फँसता जा रहा है। १९८५ में ४५००० करोड़ रुपये का विदेशी क़र्ज था, आज वह २,७६,००० करोड़ रुपये से भी अधिक हो चुका है। ऋण-सेवा ३० प्रतिशत की खतरनाक सीमा को पार कर चुकी है तथा ऋण चुकाने हेतु ऋण लेना पड़ रहा है। विश्व बैंक व अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष की शर्तों के कारण हमारे रुपये का अवमूल्यन हुआ, विदेशी पूंजी-निवेश पर बंधन लगभग समाप्त हो गये, सस्ते दाम पर अन्न की वितरण-व्यवस्था और किसानों को मिलने वाला समर्थन-मूल्य समाप्त या कम किया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा कस्टम (तटकर) कम करने व उत्पादन-शुल्क को बढ़ाने का फैसला भी ऋण-दाताओं की हित-पूर्ति के लिए उनके दबाव के कारण किया गया है।

कई सरकारी उद्यागों में विदेशी कंपनियाँ सीधे भागीदार बनने की ताक व चेष्टा में हैं तथा उपभोक्ता क्षेत्र की छोटी-बड़ी कंपनियाँ विदेशियों के हाथों बेची या उनके नियंत्रण में जा रही हैं।

इन्हीं परिस्थितियों में हमारे कच्चे माल और खेती से उत्पादित माल का बड़े परिमाण में निर्यात हो रहा है। साथ-साथ विदेशी दबाव के कारण गेहूँ का महँगे दाम पर हमें आयात भी करना पड़ रहा है। गत वर्षों में हमें रासायनिक खाद, विषैली कीटनाशक दवाओं तथा संकर बीज का प्रयोग बढ़ाना पड़ा है। उसके दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। अमरीका अपने ३०१ स्पेशल एक्ट के द्वारा हम पर भारत के पेटेण्ट कानून को परिवर्तित करने के लिए सतत् दबाव डाल रहा है। भारत को रॉकेट प्रौद्योगिकी न देने के लिए रूस को विवश कर देने में वह सफल हुआ है।

वे विदेशी शक्तियाँ गैट के माध्यम से भारत के कृषि, औषध और जैविक क्षेत्र में हमारे पेटेण्ट कानून में परिवर्तन करने के लिए दबाव डाल रही हैं। उनका लक्ष्य उन पर अपना एकाधिकार करना है। इसकी पूर्व-तैयारी के रूप

में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने बीज उद्योग में बड़े परिमाण में प्रवेश किया है। कारगिल कम्पनी उसका एक उदाहरण है। 'नमक' जैसी सामान्य वस्तु के निर्माण हेतु इस विदेशी कंपनी ने १५००० एकड़ भूमि भारत सरकार से माँगी है। वह भूखण्ड कांडला बंदरगाह के निकट होने के कारण अत्यन्त संवेदनशील है। वहाँ विदेशियों की व्यापक गतिविधि अनेक प्रश्न उत्पन्न कर रही है।

क्या हमें उस क्षेत्र में किसी विदेशी उद्योग को स्थापित होने देना चाहिए? क्या हमें उस प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है जो उनसे प्राप्त हो रही है? क्या यह आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने का मार्ग है? हमारे देश के जो विस्फोटक प्रश्न हैं, जैसे—बेकारी, गरीबी, निरक्षरता, मूल्यवृद्धि व मुद्रास्फीति को रोकना व विषमता को कम करना, क्या इस प्रकार हम उनको हल करने वाले हैं? क्या इस प्रकार हम पर्यावरण को संकट में नहीं डाल रहे हैं और देश की नैसर्गिक संपत्ति के अनाप-शनाप दोहन का मार्ग नहीं खोल रहे हैं? क्या हम अपनी स्वतन्त्रता को खतरे में नहीं डाल रहे हैं? सरकार से ये प्रश्न पूछना जागरूक समाज का दायित्व है। सरकार को गलत नीतियों पर चलने से रोकना और उसके लिए जनमत का प्रखर आन्दोलन उत्पन्न करना भी हमारा दायित्व है। वैकल्पिक सिद्धान्त, नीति तथा प्रत्यक्ष प्रयोगों और स्वदेशी जीवन-मूल्यों के आधार पर स्वदेशी कार्यतंत्र विकसित करने का दायित्व समाज के क्रियाशील लोगों को स्वीकारना होगा।

सुरुचि प्रकाशन ने इस विषय को समाज तक पहुँचाने का कार्य अपने हाथ में लेकर मा. डॉ. मुरलीमनोहर जोशी और मा० दत्तोपन्त ठेंगड़ी जी के दो भाषण तथा अन्य प्रासंगिक सामग्री संकलित करके यह सामयिक पुस्तिका प्रकाशित की है। स्वदेशी जागरण मंच की ओर से मैं इसका स्वागत करता हूँ।

— मदनदास देवी

प्रकाशकीय निवेदन

उपनिवेशों के शोषण की परजीवी परम्परा में पले, आर्थिक दृष्टि से विकसित देश नवस्वतंत्र विकासशील देशों को फिर से अपने जाल में फँसाने के जो षड्यन्त्र रच रहे हैं, उनका वह जाल फैंकने का दायित्व आई.एम. एफ., वर्ल्ड बैंक और गैट जैसी कठपुतली संस्थाओं को सौंपा गया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, दबाव डालकर कराये जा रहे तथाकथित आर्थिक सुधार और डंकेल प्रस्ताव उसी जाल के अवयव हैं। यह संकट कितना भयावह है, इससे प्रत्येक देशवासी को अवगत कराना राष्ट्रभक्त संस्थाएं अपना कर्तव्य मानती हैं। आगामी पृष्ठों में इसी का प्रामाणिक विवरण जिन दो लेखकों ने दिया है, यद्यपि वे जाने-माने विद्वान् और समाजनेता हैं, तो भी अति संक्षेप में उनका औपचारिक परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

ख्यातिप्राप्त विचारक, लेखक, श्रमिक-नेता एवं किसानों के पथ-प्रदर्शक सखा श्री दत्तोपन्त ठेंगड़ी राष्ट्रीय अर्थनीति, श्रमनीति एवं कृषिनीति के मर्मज्ञों में से एक हैं। किन्तु इतने से ही उनका सम्पूर्ण कर्तृत्व प्रकट नहीं होता। उनकी विशेषता तो यह है कि इसके साथ ही भारतीय मजदूर संघ और भारतीय किसान संघ जैसे विशाल अखिल भारतीय संगठनों के सूत्रधार संगठक के रूप में भी वे असामान्य रूप से यशस्वी हुए हैं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से, उसके प्रचारक के रूप में, राष्ट्र-सेवा में अर्पित किया है। सप्तक्रम, ध्येय-पथ पर किसान, पश्चिमीकरण के बिना आधुनिकीकरण, संकेत-रेखा, फोकस इत्यादि अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों की रचना कर राष्ट्रीय विचार-कोष की श्रीवृद्धि करने का श्रेय उन्हें प्राप्त है।

भारतीय जनता पार्टी के पूर्व-अध्यक्ष डा. मुरलीमनोहर जोशी प्रयाग विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग के अध्यक्ष हैं। राष्ट्रोन्नयन की सक्रिय राजनीति और उच्चस्तरीय ज्ञान-विज्ञान का जो विरल संयोग उनमें

दृश्यमान है, वह बरबस तक्षशिला और विक्रमशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों के आचार्यों की महान् परम्परा का स्मरण करा देता है। बाल्यावस्था से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्कारों में ढले ऐसे वैज्ञानिक अब तक मैकाले के सपनों को ध्वस्त करते आ रहे हैं तो अब डंकेल के दंश को तोड़ने में भी वे पीछे नहीं हैं।

इस पुस्तक के लेखों में विद्वान् विचारकों ने पाश्चात्य देशों से बढ़े चले आ रहे आर्थिक साम्राज्यवाद के संकट का भलीभाँति विश्लेषण कर रक्षोपाय के रूप में स्वदेशी का महत्त्व प्रतिपादित किया है।

आशा है, सभी पाठकों को यह कृति सामयिक प्रतीत होगी।

अनुक्रमणिका

१.	हिन्दू अर्थशास्त्र	५
२.	मेरा महान् भारत आज कर्जदार क्यों?	१६
३.	आर्थिक साम्राज्यवाद का अग्रदूत डंकेल प्रस्ताव	३०
४.	आँख खोलकर देख (कविता)	५५

हिन्दू अर्थशास्त्र

– दत्तोपन्त ठेंगड़ी

यह सौभाग्य की बात है कि परम पूज्य शंकराचार्य जी तथा अतिविशिष्ट सन्तों के इस मंडल के द्वारा स्वदेशी और आर्थिक संरचना जैसे विषय को मान्यता मिल रही है। प्रायः लोग सरकार द्वारा दी गयी मान्यता को महत्त्व देते हैं। परन्तु वास्तव में हमारे देश में प० पू० शंकराचार्य जी तथा सन्तों द्वारा दी गयी मान्यता को सर्वश्रेष्ठ माना जाता रहा है। मैं परम पूज्य शंकराचार्य जी को विनम्रतापूर्वक प्रणाम करते हुए अपना विषय प्रारम्भ करता हूँ।★ इतने संत-महात्माओं के सामने खड़ा होकर मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि जैसे अनेक श्रेष्ठ परीक्षकों के सामने मैं अकेला विद्यार्थी खड़ा हूँ। इसके कारण मेरी "मुखं च परिशुष्यति" की अवस्था हो रही है। किन्तु ऐसा लगता है कि इसका लाभ भी है। जैसा कि कालिदास ने कहा है – "अपरितोषात् विदुषाम् साधु न मन्ये प्रयोगविज्ञानम्"। इसलिए जो विचार होगा, वह आपके सामने रखने से उसकी समुचित समालोचना हो सकेगी और फिर आपके आशीर्वाद से वह आगे बढ़ेगा।

कुछ दिन पहले स्वदेशी जागरण मंच की ओर से हिन्दू अर्थशास्त्र (हिन्दू इकोनॉमिक्स) नाम की पुस्तक का प्रकाशन हुआ तो उस समय कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया के सेक्रेटरी श्री इन्द्रजीत गुप्त ने कहा कि ये राम-मंदिर वाले आर्थिक क्षेत्र में भी प्रवेश कर रहे हैं क्या ? ये राम-मंदिर की बात करते थे वहाँ तक ठीक था, आर्थिक क्षेत्र तो हमारा है। यहाँ के लिए निकलने से पूर्व कुछ लोग मुझे आकर मिले भी। उन्होंने कहा कि वहाँ तो सब साधु-संत इकट्ठे हो रहे थे, उनको डंकल प्रस्ताव से क्या लेना-देना ? उस समय मुझे परम पूज्य श्रीगुरुजी के शब्द स्मरण आये। मैं संघ का प्रचारक हूँ। जब पहली बार मुझे कहा गया कि आर्थिक क्षेत्र में संगठन प्रारम्भ करना है तो मेरे मन में यही विचार था कि हमारा ध्येय तो हिन्दू राष्ट्र के परम

★२६ जून १९९३ को हरिद्वार में सन्त-मंडल के समक्ष दिया गया भाषण।

वैभव की प्राप्ति है। उसका साधन हमने माना है-- "विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्"। धर्म-क्षेत्र की बात तो अलग है, किन्तु आर्थिक क्षेत्र तो विशुद्ध भौतिक है, वहाँ मुझे क्यों भेजा जा रहा है ? जब मैंने पू० श्रीगुरुजी के सम्मुख अपना मनोभाव प्रकट किया तो उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा कि तुम भी क्या बाकी लोगों जैसा सोचते हो ? उस प्रसंग में उन्होंने धर्म के विषय में जो कहा, उसका स्मरण मुझे हो रहा है।

दो भिन्न वैश्विक दर्शन

धर्म के विषय में मुझे कोई जानकारी नहीं है, किन्तु श्रीगुरुजी के शब्दों को तोते के समान आज पुनः दोहरा सकता हूँ। उन्होंने बताया कि हिन्दू और पाश्चात्य विचारों में और व्यवहार में स्थान-स्थान पर जो अन्तर दिखाई देता है, उसका कारण उनके और हमारे वैश्विक दर्शन में है। उनका वैश्विक दर्शन भौतिकता-प्रधान है। हमारा वैश्विक दर्शन चैतन्यमय है। इसके कारण वे विभिन्न नाम-रूपधारी वस्तुओं को पृथक्-पृथक् मानते हैं। हमारे ऋषियों ने सत्य का साक्षात्कार किया और अपनी अनुभूति को "अहम् ब्रह्मास्मि" कहकर प्रकट किया । "तत्त्वमसि (वह तुम हो) या "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (यह सब ब्रह्म है) के सूत्र को आधुनिक मानव को समझाना हो तो कहना पड़ेगा -- सब एक है (ऑल इज वन)। सब एक हैं (ऑल आर वन) नहीं, क्योंकि इसमें पूरा भाषान्तर आ जाता है। हमारे यहाँ इस प्रकार का चैतन्यमय वैश्विक दर्शन है, सम्पूर्ण आदितत्त्व में एक ही चैतन्य की अनुभूति की गयी है, जबकि उनके यहाँ पृथक्-पृथक् वस्तुओं को अलग-अलग नाम-रूपधारी माना गया है। जीवन का ध्येय हमारे यहाँ और उनके यहाँ, दोनों के द्वारा सुख माना गया है। किन्तु 'सुख' की कल्पना हमारी और उनकी अलग-अलग है। हमारे यहाँ माना गया कि 'सुख' का अर्थ केवल 'शारीरिक सुख' नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक--समग्र सुख है। वह भी धनीभूत और चिरन्तन। इस प्रकार के सुख को ही हमारे यहाँ सम्पूर्ण जीवन का लक्ष्य माना गया है। उसी के सर्वोच्च स्वरूप को हम मोक्ष कहते हैं। उनके यहाँ लक्ष्य होता है व्यक्ति का शारीरिक सुख और वह भी तात्कालिक। ऐसी है उनकी मनोरचना।

पुरुषार्थ चतुष्टय

यह सुख प्राप्त कैसे हो ? हमारे यहाँ कहा गया कि 'पुरुषार्थ' से यह सुख प्राप्त होगा। पुरुषार्थ एक ही है, चार अलग-अलग पुरुषार्थ नहीं हैं। पुरुषार्थ चतुर्विध है, किन्तु है एक ही। उससे जीवन का जो लक्ष्य सिद्ध होता है, वह है 'मोक्ष' और जीवन का अधिष्ठान माना गया है धर्म। इस प्रकार अधिष्ठान अर्थात् धर्म और लक्ष्य अर्थात् मोक्ष, इन दोनों के बीच में अर्थ और काम को मर्यादित (सैण्डविच) किया गया। अर्थ और काम का निषेध नहीं किया गया किन्तु उन्हें धर्म और मोक्ष के बीच में ही बिठाया है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा -- "धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ।" काम इसलिए कि शायद उस समय काम की चर्चा चल रही थी। अर्थ का विषय चलता होता तो भगवान् यह अवश्य कहते -- 'धर्माऽविरुद्धो भूतेषु अर्थोस्मि भरतर्षभ।' तो धर्म की दृष्टि में अर्थ और 'काम' का स्थान है, किन्तु साधन रूप में, लक्ष्य अथवा अधिष्ठान के रूप में नहीं।

एकात्म-दर्शन

अर्थ के संबंध में जब विचार होता है तो हमारा व्यक्ति अलग ढंग से विचार करेगा और पश्चिम का अलग ढंग से, क्योंकि वह भौतिकता-प्रधान है — वह तात्कालिक शारीरिक सुख को ही प्रधानता देता है। वह मानता है कि उसके लिए कुछ भी करना उचित है। हमारा सोचने का ढंग उससे भिन्न है। हमारा ढंग हमारे वैश्विक दर्शन के आधार पर है। हमारी दृष्टि में सम्पूर्ण अस्तित्व अर्थात् ब्रह्माण्ड या विश्व था। इस दृष्टि से सम्पूर्ण मानवता अंगी और विविध राष्ट्र व समाज उसके प्रत्यंग (अवयव) हैं। उसी प्रकार यदि राष्ट्र या समाज अंगी है तो व्यक्ति उसका अवयव है। इस प्रकार की समग्रता का विचार पं० दीनदयाल जी के 'एकात्म मानवदर्शन' का एक भाग है। समग्रता हमारा आदर्श वचन है जब कि पाश्चात्य जगत् में व्यक्ति ही प्रधान है। उनके लिए समाज मौलिक इकाई नहीं है। किन्तु उसके बिना भी उनका चलता नहीं। व्यक्ति अकेले सुखी नहीं रह सकता इसलिए क्लब में जाता है। क्लब कोई मौलिक इकाई नहीं, इकाई तो व्यक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख के लिए आता है। चार लोगों के बिना हम सुख प्राप्त

नहीं कर सकते इसलिए क्लब हैं, समाज है। क्लब मौलिक इकाई न होने के कारण व्यक्ति का क्लब के साथ एक प्रकार से अनुबन्ध होता है। क्लब का एक संविधान होता है, सदस्यता होती है, चंदा देना पड़ता है। उसके अधिकार और कर्तव्य निश्चित होते हैं। वैसे ही वे समाज के साथ अनुबन्ध जैसा सम्बन्ध मानते हैं। सोशल कॉण्ट्रैक्ट थियोरी (सामाजिक संविदा सिद्धान्त) उनके यहाँ है। हमारा आदर्श वचन 'भाव' है, 'अंगागी भाव' ,और उनका आदर्श वचन (वाच वर्ड) है 'सोशल कॉण्ट्रैक्ट'। इस कारण सम्पूर्ण चिन्तन में ही परिवर्तन आ जाता है। यह सब सृष्टि एक है — इसमें से उदय होती है "सर्वे भवन्तु सुखिनः" की भावना और "सर्वभूत हितेरतः" का विचार। जहाँ सोशल कॉण्ट्रैक्ट थियोरी है, वहाँ मौलिक इकाई व्यक्ति है और शेष सारा संसार उसके सुख के लिए है। वहाँ 'सर्वे सुखिनः सन्तु' का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। जहाँ व्यक्ति अपने लिए ही विचार करता है, उसका प्रभाव वहाँ की अर्थनीति, समाज-नीति, राजनीति अर्थात् राष्ट्रजीवन के सभी क्षेत्रों में दिखाई देता है।

अर्थ-विचार : हमारा और पश्चिम का

अब हम दोनों प्रकार की चिंतनधाराओं के आर्थिक क्षेत्र में पड़ने वाले प्रभाव का विचार करें। हमारे यहाँ विचार हुआ कि अर्थ-रचना ऐसी हो जिससे सभी सुखी हों। उनके यहाँ विचार होगा कि अर्थ-रचना ऐसी हो कि सबको न सही, किन्हीं व्यक्तियों, वर्गों अथवा समुदायों को सुख मिले, उनका पैसा बढ़े, उनका मुनाफा बढ़े। उनके यहाँ असीम 'उपभोगवाद' है और हमारे यहाँ है संयमित उपभोग। यह उनके और हमारे जीवन-मूल्यों का अन्तर है। इसका अर्थशास्त्र पर परिणाम यह होता है कि व्यक्तिगत उपभोग, व्यक्तिगत लाभ के कारण वहाँ लोगों मे शोषण करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। यहाँ प्रत्येक के मन में 'अन्त्योदय' का विचार आता है — "अंटू द लास्ट"। यहाँ प्राणी तथा वनस्पति का विचार भी आत्मीयता के साथ किया जाता है, वहाँ मनुष्य मनुष्य का ही विचार नहीं करता। ऐसी उनकी संस्कृति है, उनका दर्शन है, जिससे उनकी सारी अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। इसका मैं विस्तार नहीं करता किन्तु व्यावहारिक प्रयोग में उसका क्या

प्रभाव पड़ता है, क्या अन्तर पड़ता है, इसका एकाध उदाहरण देना आवश्यक समझता हूँ।

हमारे विचारों का परिणाम व्यावहारिक स्तर पर क्या होता है ? सर्व-साधारण सोचता है कि अर्थ अर्थात् सम्पत्ति का विचार सभी मानवों का समान ही होगा। इसमें दो विचारधाराएं हैं। उनका मत अलग है, हमारा मत अलग है। हिन्दू का परम्परागत विचार यह है कि देश में जितनी वस्तुएं हैं, जितनी सुविधाएं हैं, यह सब कुछ मिलाकर देश की सम्पत्ति है। हमारा वह "अर्थ" है। अंग्रेजी में इसे कहते हैं — "द बास्केट ऑफ गुड्स ऐंड सर्विसेज" -- वस्तुओं और सेवाओं की टोकरी। यह विचार पश्चिम का नहीं है। पश्चिम का विचार है— ये जो वस्तुएं हैं और सेवाएं हैं, उनका जो बाजार-मूल्य (मार्केट प्राइस) है, वह देश की सम्पत्ति है। आप कहेंगे, इसमें अंतर क्या है ? एक उदाहरण पर विचार करें तो ध्यान में आयेगा कि व्यवहार में कितना अंतर पड़ता है।

मान लीजिए कि हमारे देश में कुल मिलाकर सम्पत्ति है सौ धोतियाँ। सौ धोतियाँ हमारे यहाँ निर्मित हुईं। हम कहेंगे कि यह हमारी राष्ट्रीय आय है। यदि प्रत्येक धोती का मूल्य (कीमत) पाँच रुपये है तो वे लोग कहेंगे कि हमारी सम्पत्ति पाँच सौ रुपये है। आप कहेंगे कि दोनों में केवल भाषा का ही तो अंतर है। परन्तु यदि कल सौ के स्थान पर दो सौ धोतियों का उत्पादन होगा तो धोतियाँ सस्ती हो जायेंगी। आपूर्ति जहाँ अधिक होती है, बाजार में उस वस्तु का मूल्य घट जाता है। मान लीजिए, इसके कारण एक धोती का मूल्य पाँच रुपये के स्थान पर दो रुपये हो गया। अब बाजार में दो सौ धोतियाँ जाने पर केवल चार सौ रुपये मिलेंगे। वे कहेंगे कि राष्ट्रीय आय सौ रुपये घट गयी, जब कि हम कहेंगे -- राष्ट्रीय सम्पत्ति दुगुनी हो गयी।

एक और छोटा-सा उदाहरण, जो उनके ही एक अर्थशास्त्रज्ञ टीबू ने दिया है। वे मूल्य को ही जोड़ते हैं; सम्पत्ति या आय नहीं। मान लीजिए किसी नौकरानी को मालिक (नियोजक) दो सौ रुपये प्रतिमास देता है। यह वेतन रुपये की परिभाषा में मिलता है तो राष्ट्रीय सम्पत्ति की गिनती करते

समय उसका दो सौ रुपया जोड़ा जायेगा। किन्तु मान लीजिए, उस नौकरानी से मालिक को प्रेम हो गया। दोनों का विवाह हो गया। अब पत्नी बन जाने पर भी वह घर का वह सब काम करती है जो पहले करती थी। शायद मालकिन बन जाने के कारण अपना काम समझकर अधिक अच्छा करती होगी। लेकिन उसके काम को राष्ट्रीय आय में इसलिए नहीं जोड़ा जायेगा क्योंकि रुपये की परिभाषा में अब वह कुछ भी नहीं कमाती। इसलिए दो सौ रुपये प्रतिमाह राष्ट्रीय आय कम हुई, ऐसा उनकी रिपोर्ट में कहा जायेगा। हमारी रिपोर्ट में होगा कि सेवाएं जितनी थीं उतनी ही हैं। वह नौकरानी थी और अब किसी की पत्नी हो गयी, इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं।

तो यह जो वस्तुओं और सेवाओं की सम्मिलित संकल्पना है, अर्थात् वस्तुएं और सेवाएं दोनों ही संपत्ति हैं, यह हिन्दू संकल्पना है; और उनका बाजार-मूल्य संपत्ति है, यह पश्चिम की संकल्पना है। इन दोनों संकल्पनाओं से व्यवहार में कितना अंतर पड़ता है यह हम देख सकते हैं। उदाहरण केवल विषय को स्पष्ट करने के लिए दिया गया है।

सौ हाथों से संग्रह कर हजार हाथों से बाँटो

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि देश की सुख-समृद्धि के लिए सम्पत्ति की विपुल मात्रा होना आवश्यक है। उत्पादन विपुल हो। हम 'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु' कहते हैं। सबके सुख के लिए आवश्यक है कि उत्पादन विपुल मात्रा में हो। जीवनोपयोगी वस्तुएं जब अधिक मात्रा में होंगी तो अधिकाधिक लोगों के सुख का वे कारण बनेंगी। यह हमारा जो वैदिक अर्थशास्त्र है, यह विपुलता का अर्थशास्त्र है।

यह पाश्चात्य लोगों को जँच नहीं सकता। इसका कारण है— जब वस्तु बाजार में अधिक मात्रा में आती है तो उसका मूल्य घट जाता है और कीमत घटने पर 'मुनाफे' का 'मार्जिन' घट जाता है। पश्चिम का चिंतन भौतिकवादी होने के कारण उनको यह स्थिति पसंद नहीं आती। उनके चिंतन में तो इतना ही है कि 'मेरा मुनाफा कैसे बढ़े ?' मुनाफा बढ़ने के लिए वस्तु का मूल्य बढ़ना चाहिए और मेरी वस्तु का मूल्य अधिक आने के लिए बाजार में उसकी आवक कम होनी चाहिए। इसलिए विपुलता नहीं चाहिए। इस

स्थिति को युक्तिजनित अभाव (कण्ट्राइव्ड स्केयरसिटी) कहा जाता है। एक बार अमेरिका में ऐसा हुआ कि उत्पादन प्रचुर मात्रा में होने पर माल को इसलिए जला डाला और समुद्र में डाल दिया कि यदि यह माल बाजार में आया तो मूल्य कम हो जायेंगे। मूल्य कम होंगे तो उनका लाभ कम होगा। इसलिए उन्होंने अपने द्वारा ही उत्पादित माल स्वयं नष्ट किया। उद्देश्य यही था कि माल के भाव बढ़ने से मुनाफा बढ़ेगा। अतः पाश्चात्य अर्थ-व्यवस्था 'एकोनॉमी ऑफ कण्ट्राइव्ड स्केयरसिटी' (जान-बूझकर पैदा किया हुआ अकाल) की व्यवस्था है। यह उनका आर्थिक चिन्तन है।

हमारे यहाँ विपुलता की अर्थव्यवस्था है। अधिकाधिक उत्पादन करो -- "शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर" (सौ हाथों से संग्रह करके हजार हाथों से बाँट दो) यह आदेश है। इसमें अधिकाधिक लोगों को उपभोग्य वस्तुएं प्राप्त होती हैं, किन्तु वस्तुओं के भाव घटते हैं। हमारी वैदिक अर्थव्यवस्था बाजार भाव लगातार कम होने की व्यवस्था है। इस प्रकार की स्थिति पश्चिम में सन् १९२९-३० में आयी थी तो हाहाकार मचा था। उन्होंने उसे 'डिप्रेशन' कहा—'मंदी आ गयी है।' मंदी आने का अर्थ था वस्तुओं का उत्पादन अधिक हो जाने के कारण मूल्य गिर गये थे। मूल्य गिरने से इनके मुनाफे कम हो गये थे। आप देखिए, कितनी विचित्र बात है! वस्तुओं के दाम कम होने से सर्वसामान्य नागरिक की सुविधा बढ़नी चाहिए या नहीं ? वह बढ़ती है। किन्तु वहाँ सामान्य नागरिक की सुविधा का विचार नहीं होता। केवल मुनाफा बढ़ने-घटने का विचार होता है। यदि वह बढ़ा नहीं तो उसको डिप्रेशन और अवांछनीय कहा जाता है। दोनों चिंतन-धाराओं में इतना अंतर है।

हमें यह निर्णय करना होगा कि यदि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का लक्ष्य पूरा करना है तो हमारे वेदों की विपुलता की अर्थव्यवस्था ठीक है या जानबूझ कर अकाल का निर्माण करने वाली पश्चिमी अर्थव्यवस्था ठीक है ? व्यक्तिगत लाभ-केन्द्रित अर्थव्यवस्था ठीक है या मानवमात्र के लाभ को केन्द्र बनाकर चलने वाली अर्थव्यवस्था ठीक है? मूल्य निरन्तर बढ़ते रहने वाली अर्थव्यवस्था ठीक है या वस्तु-मूल्यों के निरंतर घटते जाने वाली अर्थव्यवस्था

ठीक है ? आज सम्पूर्ण विश्व को इसका निर्णय करने का समय आ गया है, क्योंकि कम्यूनिज्म समाप्त हो गया है और उसका जो दूसरा विकल्प पूँजीवाद है वह अपने ही अन्तर्विरोधों के कारण अधिक समय तक टिकने वाला नहीं है। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि आने वाले २०१० ई० तक आज जो संसार में सम्पन्नता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ देश माना जाता है, वह अमेरिका, उस स्थान पर नहीं रहेगा और पूँजीवाद (कैपिटलिज्म) भी समाप्त हो जायेगा। यह अवश्यम्भावी है। इसलिए अब विश्व को यह सोचना अनिवार्य हो गया है कि तीसरा विकल्प कौन-सा होगा ? वास्तव में तीसरा मार्ग ही एकमात्र विकल्प हो सकता है जिसके लिए 'एषः पन्था' कहा जा सकता है। किन्तु आज तीसरे विकल्प (थर्ड वे) की चर्चा सम्पूर्ण विश्व में चल रही है।

ऐसी स्थिति में अपना विचार क्या है, यह समझना और समझाना महत्त्व का हो गया है। इतना ही मैं बताना चाहता हूँ। प० पू० श्रीगुरुजी ने जो कहा था, उसे ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय श्रम आयोग को हमें जो स्मरण-पत्र देना था, उसका प्रारंभ हमने एक श्लोक से किया था --

अभावो वा प्रभावो वा यत्र नास्त्यर्थकामयोः।
समाजेष्वात्मरूपत्वं धर्मचक्र - प्रवर्तनम्।।

इसका अभिप्राय यह है कि जहाँ (समाज में) अर्थ का और काम का अभाव भी नहीं रहता और उसका प्रभाव भी नहीं रहता तथा समाज में ही व्यक्ति का आत्मभाव रहता है, वहीं धर्मचक्र का प्रवर्तन होता है।

☆ ☆ ☆

(स्वदेशी जागरण मंच द्वारा प्रकाशित डा. एम.जी. बोकारे के ग्रन्थ 'हिन्दू इकॉनॉमिक्स, की प्रस्तावना में श्री ठेंगड़ी ने लिखा है :)

प्रगति और विकास की हिन्दू संकल्पना से पाश्चात्य विचार सर्वथा भिन्न है। १९७२ की ठाणे बैठक में श्री गुरुजी (मा. स. गोलवलकर) ने आर्थिक समस्याओं पर आधारभूत हिन्दू दृष्टिकोण स्पष्ट किया था। उनके प्रतिपादन से सहज ही प्राप्त निगमन (निष्कर्ष) निम्नलिखित हैं :

(१) प्रत्येक नागरिक (राष्ट्रिक) की जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं

अनिवार्यतः पूरी होनी चाहिए।

(२) भौतिक सम्पदा का अर्जन परमेश्वर के व्यक्त रूप समाज की सेवा के उद्देश्य से, सर्वोत्तम नैतिक पद्धति से किया जाय और उस धन या सम्पत्ति में से अपने ऊपर न्यूनतम अंश ही व्यय किया जाय। स्वयं उतना ही स्वीकार करिए जितना आपको सेवा कर सकने योग्य बनाये रखने के लिए आवश्यक हो। उससे अधिक का स्वयं व्यक्तिगत उपयोग करना अथवा उस पर अपना स्वत्व बताना (अधिकार जताना) समाज की चोरी करना है।

(३) इस प्रकार हम समाज के न्यासी (रखवाले) मात्र हैं। समाज के सच्चे न्यासी बनकर ही हम उसकी सर्वोत्तम सेवा कर सकते हैं।

(४) परिणामतः व्यक्तिगत संग्रह की कुछ सीमा अवश्य निर्धारित की जानी चाहिए। निजी लाभ के लिए किसी अन्य के श्रम का शोषण करने का अधिकार किसी को नहीं है।

(५) करोड़ों लोग जब भुखमरी से ग्रस्त हैं, तब अभद्र, आडम्बरयुक्त एवं दुरुपयोगपूर्ण व्यय पाप है। सभी प्रकार के उपभोग पर समुचित मर्यादाएं अवश्य होनी चाहिए। उपभोक्तावाद हिन्दू संस्कृति की भावना (अन्तश्चेतना) से मेल नहीं खाता।

(६) हमारा आदर्शवाक्य 'अधिकतम उत्पादन और समतायुक्त वितरण' होना चाहिए तथा 'राष्ट्रीय स्वावलम्बन' हमारा तात्कालिक लक्ष्य।

(७) अनाजीविका और अपूर्ण जीविका (बेकारी तथा अर्धबेकारी) की समस्या से युद्ध स्तर पर निपटा जाना चाहिए।

(८) यद्यपि औद्योगीकरण अपरिहार्य है, तो भी उसमें पश्चिम के अन्धानुकरण की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति का दोहन करना चाहिए, हत्या नहीं। पर्यावरण के घटक, प्रकृति का सन्तुलन तथा भावी पीढ़ियों की आवश्यकताएं कभी दृष्टि से ओझल नहीं होनी चाहिए। शिक्षा, पर्यावरण, अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र का समेकित (एक साथ, समग्र) विचार किया जाना चाहिए।

(९) पूंजीपरक उद्योगों की अपेक्षा श्रमाभिमुख उद्योगों पर अधिक बल देना चाहिए।

(१०) हमारे प्रौद्योगिकीविदों का यह दायित्व होना चाहिए कि वे शिल्पियों के हित के लिए उत्पादन की परम्परागत प्रविधियों में ऐसे ग्राह्य परिवर्तन समाविष्ट करें जिनसे कामगारों के नियुक्ति (रोजगार) खो बैठने, उपलब्ध प्रबन्धकीय एवं प्राविधिक निपुणता के व्यर्थ हो जाने तथा उत्पादन के वर्तमान साधनों के पूर्ण विपूंजीकरण का जोखिम न हो; उत्पादन-प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण पर अत्यधिक बल देते हुए वे ऐसी स्वदेशी प्रौद्योगिकी विकसित करें जिसमें विद्युत् शक्ति का उपयोग हो, किन्तु उत्पादन का केन्द्र कारखाना नहीं वरन् घर को बनाया जाये अर्थात् उत्पादन-कार्य घर-घर में हो, केन्द्रीकृत कारखानों में नहीं।

(११) दक्षता और सेवायोजन (रोजगार) के प्रसार में तालमेल बिठाना आवश्यक है।

(१२) प्रत्येक उद्योग में श्रम भी एक प्रकार की पूंजी है। प्रत्येक कामगार के श्रम का मूल्यांकन अंशपूंजी (शेयर) के रूप में होना चाहिए और कामगारों को श्रम के रूप में अंशदान करने वाले अंशधारियों (शेयरहोल्डर) के स्तर पर उन्नत किया जाना चाहिए।

(१३) उपभोक्ता का हित राष्ट्रीय हित का निकटतम आर्थिक समतुल्य है। सभी औद्योगिक सम्बन्धों में समाज तीसरा और अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। 'सम्मिलित सौदेबाजी' की वर्तमान पाश्चात्य संकल्पना इस दृष्टिकोण से संगत नहीं है। इसके स्थान पर 'राष्ट्रीय प्रतिबद्धता' जैसी किसी अन्य शब्दावली का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिसका अर्थ होगा नियोक्ता और नियुक्त (मालिक और कामगार) दोनों की राष्ट्र से प्रतिबद्धता।

(१४) उद्योगों के स्वामित्व के बारे में किसी प्रकार की अनम्य रूढ़िवादिता की आवश्यकता नहीं है। निजी उद्यम, राज्य-स्वामित्व, सहकारिता, नगरपालिका-स्वामित्व, स्वनियोजन (स्वरोजगार), संयुक्त स्वामित्व (राज्य

तथा निजी), जनतंत्रीकरण इत्यादि जैसे उसके अनेक प्रकार हैं। प्रत्येक उद्योग के स्वामित्व का प्रकार उसकी स्वगत विशिष्टताओं तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की समस्त आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित किया जाना चाहिए।

(१६) सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के कितने भी प्रकार विकसित करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं, शर्त यह है कि वह 'धर्म' के मूलभूत सिद्धान्तों से सुसंगत हो।

(१७) किन्तु यदि प्रत्येक नागरिक का व्यक्तिगत मानस समुचित रूप से न ढाला जाये तो समाज की बाहरी संरचना में लाये गये परिवर्तन व्यर्थ जायेंगे। वस्तुतः किसी भी प्रणाली का सफल या असफल होना उसमें कार्य करने वालों पर निर्भर है।

(१८) व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में हमारा दृष्टिकोण संघर्ष का नहीं है वरन् सदा ही सामंजस्य एवं सहयोग का रहा है। ऐसे भावों का सृजन इस अनुभूति से होता है कि सभी व्यक्तियों का अन्तर्यामी सत् एक ही है। एकल व्यक्ति संयुक्त सामाजिक व्यक्तित्व का एक जीवित अंग है।

(१९) सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ तादात्म्य (एकात्मता) के संस्कार किसी भी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के वास्तविक सामाजिक ताने-बाने का निर्माण करते हैं। सभी हिन्दू संस्कारों में यज्ञ (अर्पण) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं. . . . . बाह्य भौतिक जगत् में परिवर्तन आने से पूर्व मनुष्य की अन्तश्चेतना का उपयुक्त विकास होना आवश्यक है।

मेरा महान् भारत
आज कर्जदार क्यों?

—डॉ. मुरलीमनोहर जोशी

हमारे देश पर आज विदेशी ऋण की मात्रा २ लाख ७६ हजार करोड़ रुपये है। प्रत्येक भारतवासी पर लगभग ३२०० रुपये का विदेशी ऋण है। इसमें घरेलू ऋण भी शामिल कर लिया जाये तो ५ लाख करोड़ आज भारत के ऊपर ऋण है। प्रत्येक भारतवासी पर लगभग ६ हजार रुपये ऋण है। बिरला, टाटा, रिलायन्स, मफतलाल, सिंघानिया जो भी विदेश में जायें वे भले ही कहें कि हम खरबपति हैं, हम शंख, दस शंख रखते हैं, वह कहेगा,—भाई जी, रखते होंगे, पर आप मेरे कर्जदार हैं। यह आज हमारे देश की परिस्थिति है। मैक्सिको और ब्राजील के बाद भारत पर सबसे अधिक ऋण है और यह ऋण बढ़ता जा रहा है। जैसा कि विदेशी संस्थाएं हम पर दबाव डाल रही हैं, हम ऋण लेते जा रहे हैं। सन् दो हजार में हम विश्व के सबसे बड़े कर्जदार होंगे। **"मेरा भारत महान्, मेरा कर्जा भी महान्"** परिस्थिति यह है।

दुनिया में सबसे अधिक बेरोजगारों का देश

आज हमारा देश दुनिया में सबसे अधिक बेरोजगारों का देश है। ५ कोटि से अधिक पढ़े अथवा अर्धशिक्षित नवयुवक हमारे देश में बेरोजगार हैं। इसके अतिरिक्त जो पढ़े नहीं हैं और १५-१६ वर्ष की अवस्था में हैं, उनके सामने जीविकोपार्जन का कोई साधन नहीं। ऐसे लोगों को यदि इसमें जोड़ दें तो संख्या ८-९ करोड़ तक पहुँच जाती है।

सबसे अधिक गरीबों का देश

विश्व में सबसे अधिक निर्धन हमारे देश में हैं। ५० करोड़ लोग पहले

थे। सरकार भी ३०-३५ करोड़ मानती है। यदि हम वही मान लें तो ३५ करोड़ लोग इस देश में निर्धनता की सीमा-रेखा के नीचे रहते हैं, जो लगभग रूस, फ्रांस, जर्मनी—इन देशों की जनसंख्या को मिला दें तो उसके बराबर होगी।

सबसे अधिक अपढ़ लोगों का देश

विश्व में सबसे अधिक "निरक्षर भट्टाचार्य" हमारे देश में हैं। हमारे यहाँ ४० प्रतिशत साक्षरता मानी गयी है। सरकारी आँकड़ों को मान लें तो ६० प्रतिशत निरक्षर हमारे देश में हैं। ५० प्रतिशत भी निरक्षर मान लें तो ४५ करोड़ संख्या होती है। जगद्गुरु भारत में ४५ करोड़ निरक्षर हैं।

सबसे अधिक क्षयरोगी, कुष्ठरोगी तथा नेत्रहीनों का देश

विश्व में सबसे अधिक क्षयरोगी (टी.बी.पेशेण्ट) हमारे ही देश में हैं। विश्व में सबसे अधिक कुष्ठरोगी हमारे देश में हैं और विश्व में सबसे अधिक नेत्रहीन भी हमारे ही देश में हैं। और अंधे भी दोनों प्रकार के हैं—नेत्रहीन भी और नेत्रसहित भी। नेत्रहीन तो आपको हरिद्वार में, लखनऊ में और दिल्ली में भीख माँगते हुए मिलेंगे और नेत्रसहित अंधे इंग्लैंड, अमेरिका और वाशिंगटन में भीख माँगते हुए मिलेंगे। **"कर्जा दे दे राम के नाम पर, भगवान् तुम्हारा भला करेगा।"** अभी मनमोहन सिंह ४-५ करोड़ डालर कर्जा लेकर आये हैं। तो हम विश्व में सबसे अधिक कर्जदार हैं, सबसे अधिक बीमार हैं और सबसे अधिक बेरोजगार हैं और निर्धन तो हैं ही। यह परिस्थिति है आज हमारे देश की!

डटकर लूटा है विदेशियों ने भारत को !

कैसे हो गयी यह स्थिति? क्या भारत सदा से गरीब था? क्या हम हमेशा से कर्जदार थे? हम तो कभी कर्जदार नहीं थे। जब देश स्वाधीन हुआ, तब भी हम कर्जदार नहीं थे। बहुत लूट हुई हमारी, मैं विस्तार से

नहीं बताऊंगा। सिकन्दर ने इस देश में लूट की दृष्टि से आक्रमण किया था, वह लूट नहीं पाया, चला गया, लेकिन मोहम्मद बिन कासिम से माउण्टबैटन तक निरन्तर लूट होती रही । सिन्ध लुटा, सोमनाथ लुटा, मथुरा लुटी, कांची लुटी, सूरत लुटा, पलासी लुटी, बंगाल लुटा, तैमूर लंग ने लूटा, नादिरशाह ने लूटा, गजनीं ने लूटा, बाद में क्लाइव , वारेन हेस्टिंग्ज ने लूटा। इस प्रकार निरन्तर लूट होती रही। हाथियों पर, ऊँटों पर लादकर हमारे यहाँ से हीरे, जवाहरात, सोना, चाँदी ले जाया गया। मु. गजनी ने तो कई बार इस देश को लूटा और उसने केवल एक बार की लूट के माल की नुमाइश जब गजनी में लगायी (यह किसी भारत के इतिहासकार ने नहीं लिखा है, वह लिखता भी तो दुख के साथ लिखता, किन्तु विदेशी इतिहासकार ने लिखा है) तो उसने कई देशों के लोगों को देखने के लिए बुलाया। लोगों ने देखा कि बड़े-बड़े बर्तनों में लाल शराब में बर्फ तैर रही है। जब पास जाकर देखा तो माणिक के ऊपर हीरे रखे हुए थे। मथुरा से ले जायी गयी एक-एक मूर्ति का मूल्य उस समय ३ लाख दीनार था। उसने बताया कि इस मूर्ति को बनाने में १० साल लगेंगे। ऐसी कई मूर्तियाँ वह ले गया था। हमारा तख्ते ताऊस यहाँ से गया, कोहिनूर भी गया। और अंग्रेजों की लूट का हिसाब यदि मैं बताऊँ तो सारा दिन निकल जायेगा। अग्रेजों ने १७५७ में पलासी का युद्ध जीता और १७६० में इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हुई। हम हिसाब लगा सकते हैं कि डलहौजी ने किस दिन किस राज्य को जीता और इंग्लैंड में कितना भेजा? अंग्रेज जब आया तो बंगाल का लगान तीन लाख पौण्ड था और जब गया तो ३० लाख पौण्ड हो गया था। बड़ी लूट मचायी और उसी लूट से उनका औद्योगिक विकास हुआ। आज यूरोप और अमेरिका जो धनवान् बने हैं, वे अपने पुरुषार्थ से नहीं बने हैं। उन्होंने छल से, बल से सीधे-सादे भारतवासियों का शोषण किया और उस शोषण के बल पर आज ये धनवान् बने हुए हैं। मैं उनको विकसित देश नहीं कहता, विकसित काहे के? झूठे, चोर,

बेईमान लोग क्या विकसित कहे जा सकते हैं? इनको विकसित कहना तो विकास शब्द का ही अपमान करना है। क्या हालत है आज उनके समाज की! उसका आज वर्णन नहीं करता, जो लोग विदेश जाते हैं उन्हें मालूम है। लेकिन आज स्थिति यह है।

ऋण की अर्थव्यवस्था

इतनी लूट के बाद जब अंग्रेज यहाँ से गया था तब ३ हजार २ सौ करोड़ रुपये हमारे पास थे, हम साहूकार थे और अंग्रेज हमारा देनदार था। स्वाधीनता के पश्चात् आज हम २ लाख ७६ हजार करोड़ रुपये के विदेशों के देनदार हो गये हैं। यह परिस्थिति देश की हो गयी है। पहली पंचवर्षीय योजना के अंत तक वह ३२४३ करोड़ रुपया हमने सब फूँक दिया और हम कर्जदार हो गये। जिस पर हमने पीछे मुड़कर कभी देखा ही नहीं। **"यावत् जीवेत्, सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।"** किसने लेना, किसने देना। यह जो ऋण की अर्थव्यवस्था है, इसने सर्वनाश किया है।

तब देश नीलाम होता है

इसके बहुत सारे कारण हैं जिनमें हमारा नियोजन भी एक है। सन् १९८० से ९० तक इन १० वर्षों में २ लाख ६३ हजार करोड़ रुपये का ऋण भारत पर हो गया। चौथी पंचवर्षीय योजना में हमारा लक्ष्य था "स्वावलम्बन" और उसमें यह सोचा गया था कि हमारी योजना विदेशी ऋण पर आधारित न हो। किन्तु आज हमारी सभी योजनाएं विदेशी ऋण पर आधारित हैं। हमारे देश के बजट का ५० प्रतिशत भाग विदेशी कर्ज की किश्त चुकाने में जाता है। हमने यह बड़ी भारी भूल की है। अब जब हमने कर्जा लिया तो वापस तो करना ही पड़ेगा। मैं कर्जा लूँ और वापस न कर पाऊँ तो मेरी सम्पत्ति नीलाम हो जायेगी। मुकदमा होगा, मुझे जेल होगी। किन्तु सरकारें यदि कर्जा लें और वापस न कर पायें तो प्रधानमंत्री और वित्त मंत्री या मंत्रिपरिषद् की सम्पत्ति नीलाम नहीं होती, तब तो

देश नीलाम होता है।

व्यथा सुनकर पाषाण भी रुदन करेगा

मैं बहुत सारे देशों का उदाहरण नहीं दूंगा। केवल चार देशों की बात करूंगा—अर्जेण्टीना, ब्राजील, मैक्सिको, और चिली। ये ऐसे देश हैं जिनकी व्यथा सारे विश्व को मालूम है। कितना करुण-क्रन्दन वहाँ की जनता कर रही है! उसको सुनकर पत्थर भी रुदन करने लगेगा। अर्जेण्टीना कर्जा वापस नहीं कर पाया, चिली, मैक्सिको और ब्राजील भी वापस नहीं कर पाये। जिसका लिया था,उसे तो वापस करना ही था। उसने कहा, यदि कर्जा वापस नहीं कर सकते तो टेलीफोन कम्पनी हमें सौंप दीजिए। हम चलायेंगे और उसके मुनाफे से कर्जा वापस ले लेंगे। उससे भी पूरा नहीं हुआ तो कहने लगे, वायुसेवा भी हमें सौंप दीजिए। उससे भी पूरा नहीं हुआ तो कहने लगे रेल सेवा भी हमें सौंप दीजिए।

कर्जा भी न चुका सका

अब इन देशों की रेलगाड़ियाँ, डाक-तार, टेलीफोन, हवाई जहाज उन देशों की सरकारें नहीं चलातीं बल्कि विदेशी कम्पनियाँ चलाती हैं। उससे भी पूरा नहीं हुआ, क्योंकि वह जाल ऐसा है कि जितना ऋण चुकाओ उतना ही बढ़ता जाता है। सुरसा की कहानी तो बहुत पुरानी हो गयी है। कर्जा न चुका पाने से इन देशों को कारखाने भी देने पड़े। कारखाने वे चलाने लगे। फिर कहा, अपने स्टील मिल्स, कागज मिल्स हमें दे दो। फिर बारी आयी कच्चे माल की। वह भी देना पड़ा। अभी भी कर्जा पूरा नहीं हुआ है।

ऋण से जर्जर हो गया फिलिप्पीन

इसी प्रकार बड़ी दर्दनाक कहानी है फिलिप्पीन की! वहाँ का राष्ट्रपति मार्कोस था। वह कर्जा तो लेता था देश के नाम और खर्च करती थी श्रीमती मार्कोस। जब मार्कोस को फिलिप्पीन से भगाया गया तो इमेल्डा मार्कोस का तहखाना खोला गया। इमेल्डा का एक-एक जूता हीरे-जवाहरातों से

जड़ा हुआ ६० हजार डालर मूल्य का निकला। एक ओर उस जमाने में फिलिप्पीन की आर्थिक दशा अत्यंत खराब थी तो दूसरी ओर इमेल्डा का जूता लाखों डालर्स का होता था। उसका मिंककोट बीस से तीस हजार डालर्स का हुआ करता था। चश्मे ५००/७०० सौ डालर्स के होते थे। फाउण्टेन पेन ५००० डालर्स का होता था। मार्कोस ने कर्जा तो लिया देश को परमाणु-शक्तिसम्पन्न बनाने के लिए और खर्च किया अपनी पत्नी इमेल्डा के जूते पर। ऐसे मार्कोस को अमेरिका राष्ट्रपति पद पर बनाये रखना चाहता था। लेकिन कर्जा तो चुकाना ही होता है। तो फिलिप्पीन में जो धान होता है उसे कर्जे की किश्त के रूप में चुकाना पड़ता है। कर्जा वापस तो विदेशी मुद्रा में ही करना पड़ता है। फिलिप्पीन का किसान धान पैदा करके भी खा नहीं सकता, क्योंकि वह तो अमेरिका के पेट में चला जाता है। फिलिप्पीन का किसान कुपोषण का शिकार है। दुनिया में कुपोषण से सबसे अधिक पीड़ित लोग यदि किसी देश में हैं तो वह है फिलिप्पीन। फिलिप्पीन के किसान को जंगल की इमारती लकड़ी नहीं मिलती क्योंकि वह अमेरिका और जापान को चली जाती है। वहाँ का किसान तो बाँस की झोपड़ी में ही रहता है। हर साल अपनी झोपड़ी की छप्पर छाता है। फिलिप्पीन जाकर देखो तो आपको दिखाई देगा वहाँ का कुपोषण से पीड़ित किसान जिसका पेट और पीठ एक हो रहे हैं, ऐसा किसान! हड्डियों का ढाँचा मात्र।

सब कुछ लुट गया फिलीप्पीन का!

लेकिन इस पर भी पूरी नहीं होती कर्ज चुकाने के लिए विदेशी मुद्रा! तो फिलिप्पीन के नौजवानों को घरेलू नौकर बन कर विदेशों में जाना पड़ता है। आज दुनिया में सबसे अधिक घरेलू नौकर फिलिप्पीन के हैं। उनके लिए स्कूल नहीं हैं, अस्पताल नहीं, कुछ नहीं है। उन्हें तो एक ही काम करना होता है और वह है लोगों के घरों की सफाई! इतने पर भी जब विदेशी मुद्रा की कमी पूरी नहीं हो पाती तो वहाँ की बहू-बेटियों को अपना

शील बेचकर सबसे अधिक विदेशी मुद्रा कमानी पड़ती है। दुनिया में सबसे अधिक वेश्याएं फिलिप्पीन की हैं। विदेशी कर्जा लेने के बाद नहीं चुकाने पर उन्हें अपना कच्चा माल, कल-कारखाने, देश के नौजवानों का पौरुष, अपनी माँ-बहिनों का शील आदि सब कुछ विदेशियों के हवाले करना पड़ता है। अब आप कर्जा कैसे चुकायेंगे?

गरीब देशों की सूची में हमारा देश ४३ वें स्थान पर है

अपने देश में भी यही हो रहा है। अभी गोदरेज कंपनी को विदेशी कंपनी ने ले लिया है। हमारी सरकार ने इस कर्जे की अर्थव्यवस्था से मुक्ति के लिए कोई काम नहीं किया। हमें यह बताया गया कि आप सबसे गरीब हैं, निर्धन हैं, आप कुछ नहीं कर सकते। सब कुछ पश्चिम से आता है। इससे बड़ा झूठ, राष्ट्र के पुरुषार्थ को समाप्त करने वाला, मनोबल को तोड़ने वाला और कोई नहीं हो सकता। यह सब हमारी शिक्षा नीति, हमारे पाठ्यक्रमों का दुष्परिणाम है। हम अपने आपको भूल गये। अपने देश को भूल गये। वास्तव में हमारे देश जैसा जनबल (मैन पावर), हमारे देश जैसे संसाधन किसके पास हैं? विदेशी कहते हैं कि आज भी १० हजार से २० हजार टन सोना भारतवासियों के पास है; मंदिरों, मठों, गुरुद्वारों के पास है, आम लोगों के पास है, सरकार के पास है। फिर भी भारत दुनिया में निर्धन देशों की सूची में है। हम दुनिया के गरीब देशों की सूची में ४३वें स्थान पर हैं। यह है आज हमारे देश की स्थिति।

हमारे देश का नाम ही भारत, भरण-पोषण करने वाला है

हमारे पास विश्व का सबसे बड़ा उपजाऊ मैदान है। अमृतसर से कलकत्ते तक जो भूखण्ड है, वह विश्व का सबसे बड़ा उपजाऊ मैदान है। विश्व के किसी देश में ५२ प्रतिशत भूमि कृषि-योग्य नहीं है। केवल भारत के ही पास है। अपने देश का नाम ही भारत है। वह भारत है जो सबका भरण-पोषण करता है। हमारा यह कर्तव्य है कि भगवान् ने दुनिया का भरण-पोषण का जो काम हमें सौंपा है उसे हम पूरा करें।

यह भूमि अन्नपूर्णा है

.....किन्तु पानी बहता चला जा रहा है। जो सिंचाई की योजना हमने बनायी है उसमें एक करोड़ हैक्टर भूमि सिंचाई के बिना रह जाती है। पानी है किन्तु सिंचाई नहीं हो रही है। देश की केवल ३० प्रतिशत भूमि सिंचित है। बाकी सब प्रकृति पर निर्भर है। केवल सिंचाई उपलब्ध कराइए, और सब बातें बंद कीजिए। केवल पानी देने से ही देश की शेष ७० प्रतिशत भूमि तीन गुना फसल देगी और यदि हम मान लें कि खाद के अभाव में कुछ कम पैदा करेगी तो भी दुगुना तो करेगी ही। आज भी हम १७.६ करोड़ टन अनाज पैदा कर रहे हैं। इसका तीन गुणा अर्थात् ५३ करोड़ टन अनाज हम पैदा कर सकते हैं जो भारत की आवश्यकता से बहुत अधिक है। २० करोड़ टन में हमारा काम चल जाता है। और यदि हम ५३ करोड़ टन पैदा करेंगे तो कम से कम ३० करोड़ टन हम दुनिया को दे सकेंगे। कोई सोमालिया और अफ्रीका में भूखा नहीं मरेगा। यह अन्नपूर्णा भूमि है। सारे विश्व का भरण-पोषण कर सकती है। इतनी शक्ति हममें है।

रत्नगर्भा है भारतमाता

लेकिन इन्होंने कभी इस बात की चिंता ही नहीं की। किसान को त्रस्त करो, किसान को ध्वस्त करो। किसी प्रकार भारत की कृषि को विकसित न होने दो। यह षड्यन्त्र है अंतरराष्ट्रीय। मैं आज उसकी चर्चा नहीं करूंगा, लेकिन यह हो रहा है। **हमारे पास शस्य-श्यामला भूमि है। पयस्विनी नदियाँ हैं, रत्नगर्भा है हमारी भारत माता! दुनिया का ऐसा कोई प्रमुख कच्चा माल नहीं है, जो हमारे पास न हो, हमारे पास कोयला है, लोहा है और अब तो विश्व का सर्वोत्तम यूरेनियम हमारे पास है। सोने का अभाव था लेकिन अब फिर सोना मिलने लगा है। जो थोड़ा-बहुत किसी वस्तु का अभाव हो सकता है उसे हम दुनिया के बाजार से खरीद सकते हैं। हमारे पास क्या नहीं है? सीमेण्ट के भंडार हैं, निकल, बॉक्साइट,**

तांबे की खानें तो हैं ही, प्लेटिनम भी है। तेल और गैस के कुएं भी मिलने लगे हैं। इतना भारी कच्चा माल है हमारे पास!

आज भी विश्व का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है भारत में!

जापान के पास लोहे का एक कण भी नहीं है, जब कि वह सब कुछ बनाकर बेचता है और हमारे पास लोहे के भंडार भरे हुए हैं किन्तु हमारी क्या दशा है! आज भी हम दाढ़ी बनाने के लिए विदेशी ब्लेड का प्रयोग करते हैं। यह परिस्थिति है। हमारे पास सर्वाधिक क्षमता वाली ज़नशक्ति (मैन पावर) है। विश्व का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है भारत में! यह मैं इसलिए नहीं कह रहा कि मैं हिन्दू हूँ और भारतवासी हूँ। जितनी दुनिया मैंने देखी है और वहाँ के मनुष्य देखे, उसके अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि भारत का मनुष्य अब भी परमात्मा का स्वरूप है। हमारे शास्त्रों में तो कहा ही है, **"गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।।"** बावजूद इसके हमारे यहाँ सबसे अधिक बेरोज़गार हैं, सबसे अधिक अंधे हैं, सबसे अधिक कोढ़ी हैं और सबसे अधिक क्षयरोगी हैं। इसके बाद भी हम बहुत अच्छे हैं।

पश्चिम के धनी देशों का पतन

पिछले साल हम जर्मनी गये थे। होटल में ब्रीफकेस रखकर खड़े हो गये तो होटल के कर्मचारी ने कहा— भाई साहब, आप ब्रीफकेस दोनों पैरों के बीच दबाकर खड़े हो जाइए। मैंने कहा, क्यों? तो उसने कहा कि कोई उठाकर भाग जायेगा। विश्व के इतने धनी देश की यह हालत है। और इटली में तो जेब रोज कटती हैं। क्राइम कंडीशन सारे पश्चिमी देशों में क्या है? न्यूयार्क में जाने पर लोग कहेंगे कि आप अकेले लिफ्ट में मत जाइए और आप मूत्रालय या शौचालय में जा रहे हैं तो देख लीजिए कि वहाँ कोई छिपा हुआ तो नहीं है। केवल दस-बीस डालर्स के लिए आपकी हत्या हो जायेगी। सब प्रकार के अपराध, यौन अपराध, मादक द्रव्यों के अपराध और हत्या, बलात्कार के अपराध जितने पश्चिमी देशों में हैं, भारत

में उसके शतांश भी नहीं हैं। भारत का मनुष्य धर्मभीरु है। अब भी अनुशासित है।

निर्धन फिर भी बचत में आगे

जापान विश्व में एक धनी देश है। उसकी बचत २४ प्रतिशत है। और हम विश्व के सबसे गरीब देशों में से होने पर भी दो वर्ष पूर्व हमारी बचत २४ प्रतिशत थी। आज २१ प्रतिशत रह गयी है। हम निर्धनता में भी बचाते हैं। हम इतने अपरिग्रही हैं। ये सब हमारे देश के गुण हैं। देवदुर्लभ मनुष्य हैं भारत में! जहाँ गये, वहीं प्रतिष्ठा प्राप्त की। किसी जमाने में अमेरिका में यहूदी सबसे अधिक धनी हुआ करते थे। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जो भारतवासी आज अमेरिका में हैं, उन्होंने यहूदियों को पीछे छोड़ दिया है। आज अमेरिका में जो अन्य देशों के लोग हैं, उनमें भारतीय सबसे धनी हैं। जितने होटल थे उन्हें गुजरात के पटेल भाइयों ने खरीद कर मोटल बना दिया है। मैं जब लन्दन गया तो वहाँ के प्रधानमंत्री जॉन मेजर से मिला। वे कहने लगे, आपके भारतवासी जो हिन्दू हैं वे बड़े अच्छे हैं, बड़े कर्मठ हैं, बड़े अनुशासित हैं। उन्होंने कहा कि उनकी पत्नी जब भी सामान खरीदती है, हिन्दू व्यापारी से ही खरीदती है। उसके साथ कभी धोखा नहीं हुआ, कभी दुर्व्यवहार नहीं हुआ। यदि मेरी लड़की किसी और दुकान पर चली जाती है तो आधा घंटा तो उसे छेड़खानी सहनी पड़ती है और बिल में कितनी गड़बड़ी होती होगी, मुझे पता नहीं। छः प्रतिशत वहाँ भारतीयों की संख्या है और ४३ प्रतिशत व्यापार पर उनका नियंत्रण है। यूरोप के यदि दस धनी नाम गिनाये जायेंगे तो उनमें से एक भारतीय अवश्य ही होगा।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों को लूट की छूट

विश्व में भारतीय जहाँ भी गया उसने वहाँ नाम कमाया। भारत का मनुष्य क्या अपने देश में कुछ नहीं कर सकता? यहाँ भी कर सकता है लेकिन उसे अवसर नहीं दिया जाता। हमने तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों

को अवसर दिया है। क्या बना रही हैं ये कंपनियाँ? आलूचिप्स। जो आलू एक रुपया साठ पैसे किलो है, उसकी चिप्स "अंकल चिप्स" के नाम से १६० रुपया किलो बिकती है। आज यह परिस्थिति है। पाप कॉर्न (मक्का का लइया), मैगी (सिमैयाँ) बनाने के लिए विदेशी कंपनियाँ भारत में बुलायी जा रही हैं। क्या हम लोग इन को अब तक नहीं बनाते थे? क्या इसके लिए विदेशी तकनीक की आवश्यकता है? चटनी, अचार, मुरब्बा, सब कुछ अब विदेशी कंपनियाँ बनायेंगी। जूता कौन बना रहा है? "बाटा"। और माचिस कौन बना रहा है? "विमको"। मंजन कौन बना रहा है? "कोलगेट", पहले चार रुपये की ट्यूब आती थी अब ३० रुपये देने पड़ते हैं। जब कंपनी बनी थी तो एक लाख रुपया लगाया था, आज ४०० करोड़ रुपये की है। ये कंपनियाँ १० रुपये के शेयर पर ८ रुपये मुनाफ़ा देती हैं और हर साल बोनस भी देती हैं। हर दूसरे साल एक पर एक। जिन्होंने १०० शेयर खरीदे थे उनके दो-दो हजार शेयर हो गये हैं और प्रत्येक शेयर पर ८ रुपया मुनाफा मिलता है। एक साल तो १० रुपये पर १२ रुपये का मुनाफा दिया था।ये कंपनियाँ एक पैसा भी एक्साइज नहीं देतीं। कोलगेट लगाओ और दाँतों को चमकाओ! और फिर नकली दाँत लगाने के लिए डाक्टर के पास जाओ। ट्यूब ऐसी बनाते हैं कि जरा-सा दबाते ही बहुत सारा निकल जाता है और जितना निकलता है सब रगड़ना पड़ता है। वापस डालने का तो उपाय ही नहीं है। मध्य प्रदेश में एक सज्जन बोले, मैंने तो ट्यूब दबाया तो केवल हवा निकल कर रह गयी। ये हैं मल्टी-नेशनल (बहुराष्ट्रीय) कंपनियों की करामात! दाढ़ी बनाने का ब्लेड मल्टी-नेशनल, दवाइयाँ मल्टी-नेशनल, नमक मल्टीनेशनल। महात्मा जी ने नमक पर टैक्स लगाये जाने पर आन्दोलन किया था, सरकार नमक नहीं बनायेगी। भारतवासी स्वयं नमक बनायेंगे। आज उन्हीं गांधी जी के नाम पर काम करने वालों ने अमेरिका की कारगिल कंपनी को बुलाकर गांधी जी के उसी गुजरात में नमक बनाने का काम सौंपा है। अब नमक भी हम नहीं बना

सकेंगे। क्या नमक में आयोडीन हम नहीं मिला सकते? स्वाधीन भारत के ४७ वर्षों में क्या हम घास खोदते रहे? यह २ लाख ७६ हजार करोड़ कर्ज का रुपया आखिर कहाँ गया? जिस देश में इच्छाशक्ति होती है वह सब कुछ करता है। हम भी जहाँ हम करना चाहें, कर सकते हैं। हमने अंतरिक्ष में जितना भी अनुसंधान किया है उसमें न तो विदेशी तंत्रज्ञ हैं और न ही विदेशी पूंजी। भारत के वैज्ञानिकों ने अपनी इच्छाशक्ति से उसे सफलतापूर्वक करके दिखा दिया है और आज हम पर अंतरिक्ष-कार्यक्रम बंद करने के लिए विदेशी शक्तियाँ दबाव डाल रही हैं। प्रक्षेपास्त्रों के प्रयोगों को रोकने को कहा जा रहा है। 'पृथ्वी' प्रक्षेपास्त्र हमने बना लिया है, 'अग्नि' प्रक्षेपास्त्र बन रहा है। बनना चाहिए। अग्नि का निर्माण होना ही चाहिए। एटम बम बनाना ही चाहिए। दोनों का संयोग होना ही चाहिए।

विश्व में हमारा उत्पादन सस्ता और सर्वोत्तम होगा

इससे अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा बढ़ती है। लोगों का मनोबल, पौरुष जागता है। हमारा पड़ोसी चीन है। उसकी भी चर्चा करके मैं समाप्त करूंगा। आज हमारे पाँव तो स्वदेशी हैं लेकिन जूता विदेशी है। दाढ़ी स्वदेशी है और ब्लेड विदेशी। दाँत स्वदेशी हैं तो मंजन विदेशी। बीड़ी स्वदेशी है, माचिस विदेशी। बीमारी स्वदेशी है तो दवाई विदेशी। इस विदेशी के प्यार और स्वदेशी के तिरस्कार से हो गया भारत बीमार, भारत बेरोजगार और भारत कर्जदार! इसी क्रम में हो तो रहा था कांग्रेस स्वदेशी और उसका अध्यक्ष विदेशी। पर बच गया स्वदेशी। लोग यह समझते हैं कि हम कुछ नहीं कर सकते। क्या हम यह भूल गये कि २५०० वर्ष पूर्व हमारा जो स्टील (फौलाद) बनाने का उद्योग था वह विश्व में प्रसिद्ध था। सिकन्दर जब भारत में आया था तो उसने पोरस राजा से कुछ मन लोहे की भिक्षा माँगी थी, जिस लोहे से यूरोप में उस जमाने में तलवारें बनती थीं। यह ग्रीक इतिहासकार ने लिख रखा है, किसी हिन्दू ने नहीं। उस जमाने में दमिश्क की तलवारें (सोअर्ड ऑफ दमिश्क) प्रसिद्ध थीं, लेकिन उसके लिए

लोहा भारत से ही जाता था। पोरस ने सिकंदर को जो लोहा दिया उसी लोहे का लोहस्तम्भ गत ढाई हजार वर्षों से दिल्ली की कुतुबमीनार के पास खुले आकाश के नीचे खड़ा है। उस पर जंग का नाम नहीं। मैं चुनौती देता हूँ कि विदेशी वैज्ञानिक केवल ५० वर्ष तक पानी में रखकर भी जंग न लगने वाला लोहा बनाकर तो दिखा दें। भारत की प्रतिभा, उसके उद्योग और तकनीक विश्व में प्रसिद्ध थी। आज भी हममें वह प्रतिभा और कौशल है। हम देश में सर्वश्रेष्ठ और सबसे सस्ते उत्पादन कर सकते हैं। देश को समझने की जरूरत है।

विपुल उत्पादन और संयमित उपभोग में ही है संकट का हल

प्रभु श्रीराम ने सीता-हरण के बाद रावण से सीता को मुक्त कराने के लिए राजा जनक से दो डिवीजन सेना की माँग नहीं की थी। उन्होंने भरत से सेना माँगना तो दूर, उसे सीता-हरण की सूचना तक नहीं दी। उन्होंने भारत के अति सामान्य वानर और रीछ एकत्र किये और आज जिस प्रकार आसुरी संपदा के स्वामी यूरोप-अमेरिका हैं, उस काल की आसुरी संपदा के सोने की लंका वाले स्वामी को परास्त किया। उसका नाश कर सीता को मुक्त किया। भारत की सामान्य जनता की शक्ति को जगाइए, वह विश्व से आसुरी अर्थव्यवस्था को समाप्त करके "**सर्वे सुखिनः सन्तु**" की अर्थव्यवस्था का निर्माण कर सकती है। स्वदेशी का अर्थ यही है, उसका अर्थ तकली नहीं है। इसका अर्थ है अपने अंदर के सुप्त पौरुष को जगाना, अपनी प्रतिभा और मेधा को समझना, राष्ट्रीय पुरुषार्थ का अनुसंधान करना। हम मल्टी-नेशनल कंपनियों से आतंकित नहीं हैं। भारत भी विश्वभर में जाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बनायेगा। लेकिन भारत न किसी का कर्जदार बनेगा और न किसी को कर्जदार बनायेगा। विश्व में सबको सब वस्तुएँ उपलब्ध हों, संयमित उपभोग हो। हम इस असंयमित उपभोग के हामी नहीं हैं। पश्चिम की आज जो ये सारी दुर्व्यवस्थाएं हैं, असंयमित उपभोग के कारण हैं। संयमित उपभोग और विपुल उत्पादन

में से होगी बचत। इसी में से सबको आवश्यक सामग्री उपलब्ध होगी। भारत यह कर सकता है। इसीलिए है स्वदेशी अपनाओ का अभियान!

चीन कृषि और स्वदेशी से ही महाशक्ति बन रहा है

अब मैं चीन की चर्चा करके समाप्त करूंगा। चीन की इस समय प्रगति बड़ी तीव्रगामी है। १२ प्र. श. की दर से चीन की अर्थव्यवस्था की प्रगति हो रही है। इतनी प्रगति किसी देश की नहीं हो रही है। उसका पड़ोसी देश जापान जो कि विश्व की प्रमुख आर्थिक शक्ति माना जाता है, वह भी तीन प्र. श. से अधिक नहीं बढ़ रहा है। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका भी ३ प्र. श. से अधिक प्रगति नहीं कर रहे। एक अरब लोगों का देश १२ प्र. श. की रफ्तार से बढ़ रहा है। इसे देखकर विश्व आज कम्पायमान हो रहा है। रूस तिरोहित हो गया, चीन अब नवीन शक्ति के रूप में उभर रहा है। परमाणु-शक्ति-सम्पन्न एक अरब जनसंख्या वाला चीन अमेरिका के लिए चुनौती बन सकता है। उसकी यह आश्चर्यजनक प्रगति कृषि और स्वदेशी की ओर ध्यान देने से हुई है। आज चीन महाशक्ति बन रहा है। उसने भारत की उत्तरी सीमा पर सुरक्षा के लिए प्रक्षेपास्त्र स्थायी रूप से लगा रखे हैं।

विश्व में इस्लामी आतंकवाद उभर रहा है। स्वामी वामदेवजी ने जैसा कहा, भारत को इस्लामिक राष्ट्र में परिवर्तित करने का षड्यन्त्र चल रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था चौपट की जा रही है। ऐसे में यह आवश्यक है कि हम अपने आपको पहिचानें। हम जानें कि हम कौन हैं। इस हनुमान को जगाने के लिए जरूरत है आप सब संतों की। एक बार भारत के पुरुषार्थ को जगा दीजिए, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हम १० वर्षों में भारत को विश्व की आर्थिक, सामरिक महाशक्ति बनाकर दिखाने का सामर्थ्य रखते हैं।

आर्थिक साम्राज्यवाद का अग्रदूत डंकेल प्रस्ताव

—दत्तोपन्त ठेंगड़ी

अब हम डंकेल प्रस्ताव पर विचार करें। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् साम्राज्यवादी देश, अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों के दबाव के कारण, सभी औपनिवेशिक देशों को स्वतंत्रता देने के लिए विवश हुए थे। उनका साम्राज्य होने के कारण ऐसा दिखाई देता है जैसे वे बहुत समृद्ध देश थे। किन्तु वास्तव में वे अपने पैरों पर खड़े नहीं थे, उपनिवेशों के शोषण से वे समृद्ध हुए थे। एक उदाहरण—वे हिन्दुस्थान के शासक होने के कारण यहाँ की कपास को कम से कम मूल्य में खरीद कर ले जाते थे और लंकाशायर तथा मैनचेस्टर में कपड़ा बनाकर फिर हिन्दुस्थान में लाते थे। यहाँ के बाजार में उस माल को अधिक दाम पर बेचकर ये साम्राज्यवादी देश हमारा शोषण करते रहे। इस कारण वे समृद्ध बने। वे अपने पैरों पर खड़े नहीं थे। उनके पास अपने कोई साधन-स्रोत (रिसोर्सेज) नहीं थे। अर्थशास्त्र में इस शब्द पर ध्यान देने की आवश्यकता है। जैसे—जापान के पास अपने साधन नहीं हैं, किन्तु भारत के पास साधन-स्रोत बहुत हैं। साधन-स्रोतों का अभाव होते हुए भी जापान एक समृद्ध देश है और साधन-स्रोतों से सम्पन्न होते हुए भी हम गरीब देश हैं। अतः साधन-स्रोत एक बात है।

शोषकों के मार्ग का रोड़ा—देशभक्ति

लेकिन उनकी अर्थव्यवस्था अब चरमराने लगी है। वे समझ गये हैं कि किसी का शोषण किये बिना उनकी अर्थव्यवस्था नहीं चल सकती। अब उनके सामने समस्या है कि नव-स्वतंत्र देश अपना शोषण पहले जैसा कैसे होने देंगे। यदि वहाँ की जनता जागृत व राष्ट्र-भक्ति-युक्त रही तो यह

संभव नहीं होगा। वे अपना शोषण पराये लोगों द्वारा नहीं होने देंगे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् स्वतंत्र हुए सभी विकासशील देशों को 'तीसरी दुनिया' कहा जाता है। विश्व का मानचित्र देखने से पता लगता है कि ये देश विश्व के दक्षिणी भाग में हैं और गोरे साम्राज्यवादी देश उत्तर में थे। तीसरी दुनिया का शोषण करना उनके लिए अनिवार्य था, जीवन-मरण का प्रश्न था। किन्तु अपना शोषण कौन करने देगा ? यह तो तभी संभव है जब इन देशों में राष्ट्रभक्ति न हो और उनके पिट्ठुओं की सरकार वहाँ हो।

नियोजित पश्चिमीकरण

इस दृष्टि से कि अविकसित देशों के लोग राष्ट्रभक्त न हों, वहाँ पाश्चात्य रीति-नीति व पद्धति का प्रचार किया जाता है। लोगों का योजनापूर्वक पश्चिमीकरण हो रहा है। ऐसे ही संस्कार-भ्रष्ट लोग उन पश्चिमी शोषक देशों के सहयोगी बने हुए हैं।

पिट्ठुओं की सरकार: निहित स्वार्थों की साँठ-गाँठ

इन सभी विकासशील देशों को आर्थिक विषयों में भी अंधेरे में रखा गया। उन्होंने यह सोचा कि राज्यकर्ता यदि भ्रमित रहेंगे तभी शोषण के लिए अनुमति देंगे, और वह अनुमति तभी प्राप्त होगी जब सरकार में अपने ही लोगों का शोषण करने वाले व्यक्ति रहें। अतः उनके लिए आवश्यक था कि उन सभी विकासशील देशों में, जिनका वे शोषण करना चाहते हैं, ऐसी सरकारें आनी चाहिए जो शोषण की अनुमति दें। यह स्पष्ट ही है कि सरकार में यदि राष्ट्रभक्त लोग हैं तो वे इसकी अनुमति नहीं देंगे।

साम्राज्यवादी जानते थे कि पैसे में बड़ी शक्ति होती है। उनके सामने प्रश्न था कि राज्यकर्ताओं को कैसे खरीदा जाये ? हमारे देश के नेताओं के सामने भी एक प्रश्न था कि वे सत्ता में कैसे बने रहें ? उन्होंने

देश में एक ऐसा संविधान स्वीकार किया जो पश्चिमी ढंग का, विशेष रूप से एंग्लोसेक्शन ढंग का है। जिस देश में ४४ प्र० श० जनता निरक्षर, अशिक्षित और गरीबी की रेखा के नीचे हो और १२ प्र० श० अर्धशिक्षित हो, वहाँ वेस्ट मिन्स्टर मॉडल का संविधान चल ही नहीं सकता। जहाँ काला अक्षर भैंस बराबर की स्थिति हो, वहाँ इसे पढ़ेगा कौन ?

जापान-जर्मनी और हम

अब जापान-जर्मनी का विचार करें और देखें कि वहाँ क्या हुआ ? दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् जापान और जर्मनी खण्डहर हो गये थे। उनके उद्योग नष्ट हो गये। वहाँ भूमि पर युद्ध हुए थे, लेकिन हमारी भूमि पर तो लड़ाई हुई भी नहीं थी। हम उतने उजड़े भी नहीं थे। किन्तु जापान और जर्मनी की जनता और सरकार का दृढ़ संकल्प था कि वे राष्ट्र का पुनर्निर्माण करके रहेंगे। इसके विपरीत, हमारे यहाँ स्वतंत्रता के बाद जैसे ही लोग सत्ता में आ गये, वे सोचने लगे कि राष्ट्रनिर्माण का काम हमारा नहीं है। उन्हें जो नया सुख मिला था, उसका अधिकाधिक उपभोग करने की उनमें होड़ लग गयी। 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनाः' (बड़ा माना जाने वाला व्यक्ति जैसा आचरण करता है, वैसा ही अन्य लोग भी करने लगते हैं।) अतः अन्य लोग भी स्वार्थ-साधन में लग गये। स्वार्थ-सिद्धि के लिए लोग हुकूमत में भी शामिल होने लगे।

पैसे की राजनीति

जहाँ इतनी गरीबी है, वहाँ शासन-सत्ता में आने के लिए सबसे सरल साधन पैसा है। पैसे से 'वोटों' को खरीदा जा सकता है। लेकिन पैसा तो पैसे वालों से आता है। वे राजा हर्ष या कर्ण तो हैं नहीं कि दान की दृष्टि से देंगे। पैसा देनेवाला यह तो कहेगा नहीं कि 'आइए नेताजी, मेरा खजाना लूट ले जाइए। मैं तो मायाजाल से मुक्त होना चाहता हूँ।' जो पैसा देगा वह एक-एक पैसे की कीमत माँगेगा। 'यदि आप हमारे पैसे के बल पर

राजसत्ता में आते हैं तो आपकी सत्ता का उपयोग हमारा पैसा बढ़ाने के लिए होना चाहिए'। इस समझौते के साथ पैसा दिया और लिया जाता है। जिनसे पैसा लिया जाता है, उनके सामने शासकों की आँखें शर्म से झुकी रहती हैं। पैसे वालों के ये कबूतर नेता उनके सम्मुख गुटर-गूँ नहीं कर सकते। भले ही वे बातें समाजवाद की करें, लेकिन व्यवहार में उनका ही साथ देंगे। यहाँ हमारे नेता राह देखते बैठते हैं कि उन्हें खरीदने के लिए अभी तक कोई क्यों नहीं आ रहा है ? इसके लिए बेचैन रहते हैं।

विदेशी जाल

साम्राज्यवादी देशों का यह सोच रहता है कि 'तीसरी दुनिया' के देशों में जिनको खरीदा जा सकता है, वे सत्ता में कैसे आयें। दोनों का संयोग होने पर विदेशी आर्थिक साम्राज्यवाद की नींव पड़ जाती है। इस विषय में मैं विस्तार में नहीं जाना चाहता और केवल एक ही बात कहूंगा। १९५२-५३ में पी० एल०-४८० की व्यवस्था की गयी। उस समय हमारे यहाँ गेहूँ पर्याप्त था, तो फिर यहाँ गेहूँ क्यों मँगाया गया ? एक और उदाहरण—१९६५ में पाकिस्तान के साथ नहरी पानी के बँटवारे के बारे में एक समझौता हुआ। वह समझौता पाकिस्तान के पक्ष में जाने वाला और हमारे हितों के विरुद्ध था। उस समय प० पू० गुरुजी (श्री माधव सदाशिवराव गोलवलकर) ने एक सार्वजनिक वक्तव्य द्वारा भारत सरकार को चेतावनी दी थी कि यह समझौता गलत है, विश्व बैंक के दबाव के कारण किया गया है। विदेशी पूँजी के दबाव के कारण यदि समझौता करने का अभ्यास बना तो देश में विदेशियों का आर्थिक साम्राज्य आ जायेगा। यह चेतावनी १९६५ में श्रीगुरुजी ने दी थी, जिसे अनसुना कर दिया गया। यह रोग बढ़ता चला गया। पहले विदेशी सहभागिता (फॉरेन कॉलेबरेशन) के समझौते हुए। उनमें देश के हित में कुछ प्रतिबंधक शर्तें होती थीं। इस कारण देशवासियों ने उस पर विशेष आपत्ति नहीं की और ये आत्मघाती नीतियाँ फलने-फूलने लगीं।

भारत में विदेशी आर्थिक साम्राज्य की जड़ें जमाने का प्रयास तीन माध्यमों द्वारा प्रारम्भ हुआ:--

१. अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष (आई० एम० एफ०),

२. विश्व बैंक (वर्ल्ड बैंक),

३. बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ (मल्टीनेशनल कम्पनीज),

उसकी ये तीन एजेंसियाँ थीं।

विदेशी पूँजी का प्रपंच

विदेशी पूँजी के हाथ बहुत लम्बे होते हैं। यह हम समझ नहीं पाते हैं कि उनकी पहुँच कहाँ तक है। अपनी भावी रणनीति को क्रियान्वित करने के वर्षों पहले से उन्होंने हम लोगों को भ्रमित और पथभ्रष्ट करने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया था। इसका बोध सभी को हो सके, इसके लिए कुछ उदाहरण देना आवश्यक है अन्यथा इसे समझना कठिन होगा। अब यही देखें कि यहाँ बैठे हुए लोगों को भी यही तो लगता होगा कि पैसे का प्रवाह विकसित देशों की ओर से विकासशील देशों की ओर आता है। हम सबकी यही धारणा है कि 'अरे भाई। जो धन ऋण (कर्ज) के रूप में आता है उस पर तो सूद देना पड़ेगा, लेकिन जो सहायता के रूप में प्राप्त होता है उसका तो अर्थ यही होता है कि उसे वापस नहीं करना है। हमको यदि बेचारे सहायता दे रहे हैं तो हमें उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, न कि नाराज होना चाहिए।' किन्तु क्या यह सत्य है कि विकसित देशों से विकासशील देशों की ओर धन आ रहा है ? यह एकदम झूठ है—नितान्त असत्य। बात बिल्कुल इसके विपरीत है। एक झूठ को सौ बार सत्य के रूप में प्रतिपादित करने पर वह सत्य मान लिया जाता है, यह जर्मनी के तानाशाह हिटलर के प्रचारमंत्री डॉ० गोएबल्स का सिद्धांत था। इसके उदाहरण के रूप में दो वर्ष पूर्व के कुछ आँकड़े मैं बताता हूँ। विकसित देशों ने विकासशील देशों के साथ जो व्यवहार किया, उसके उदाहरण से सब स्पष्ट हो जायेगा। ये आँकड़े सन् १९९१ के हैं। उस वर्ष विकसित

देशों ने विकासशील देशों को ४६ अरब डॉलर दिये थे, और उसी वर्ष में प्रोफिट रिपेट्रिएशन के रूप में अर्थात् इन देशों से प्राप्त मुनाफे के रूप में १४७ अरब डॉलर की धनराशि विकासशील देशों से विकसित देशों की ओर गयी। प्रचार विकासशील देशों को सहायता देने का तो हुआ; लेकिन इन देशों से १४७ अरब डॉलर वे ले गये, इसका प्रचार नहीं हुआ। इसका लेखा-जोखा करने पर पता चलता है कि ६८ अरब डॉलर की धनराशि विशुद्ध मुनाफे के रूप में साम्राज्यवादी देशों में गयी।

केवल समाचार-पत्र पढ़कर यह बात ध्यान में नहीं आती। ऐसे अंडरहैण्ड डीलिंग्स' (अंधे सौदे) होते हैं कि पता नहीं चलता। जब राज्यकर्ता और विदेशी पूँजी में साँठगाँठ होती है तो जनता को अंधेरे में रखकर होती है, जनता के हित या विकास के लिए नहीं। और विदेशी पूँजी लगाने वालों का यह भी प्रयत्न रहता है कि वे ही लोग पुनः सत्ता में आने चाहिए, अन्यंथा उनका सारा खेल ही खत्म हो जायेगा। राज्यकर्ता और विदेशी पूँजी में साँठगाँठ होने पर क्या-क्या होता है, इसका एक और उदाहरण देता हूँ:

आपने फिलिप्पीन के मार्कोस का नाम सुना होगा। वह भ्रष्टाचारियों का सम्राट् था। मार्कोस ने लोगों की देशभक्ति का आह्वान किया। उसने कहा कि 'हमारा देश सामरिक दृष्टि से पिछड़ा रहे, यह अच्छा नहीं। अपने देश में हम पारमाण्विक संयन्त्र (न्यूक्लियर प्लाण्ट) लगायेंगे।' समाचारपत्रों ने इसका स्वागत किया। समाचारपत्र किसका और क्यों समर्थन करते हैं, यह हम सभी जानते हैं। मार्कोस ने इस न्यूक्लियर प्लाण्ट के लिए विदेश से दो अरब डॉलर का ऋण लिया। कर्जा लेने के बाद प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस संयन्त्र को खड़ा कौन करेगा। टेण्डर मँगवाये गये, लेकिन उन्हें देखा भी नहीं गया। जिससे पहले ही साँठगाँठ हो चुकी थी उसी को बुलाया। उससे आठ करोड़ पचास लाख डॉलर का सौदा हुआ। मार्कोस ने इतनी राशि का ड्राफ्ट ठेकेदार (काण्ट्रेक्टर) को दिया। किन्तु फिलिप्पीन के लोगों

के कथनानुसार वह ड्राफ्ट टेबल के नीचे से पुनः मार्कोस के हाथ में आ गया। संयन्त्र का निर्माण तो क्या, नींव रखने तक का काम भी प्रारम्भ ही नहीं किया गया। लेकिन विदेशी कर्ज के दो अरब डॉलर का प्रतिदिन तीन लाख पचपन हजार डॉलर सूद फिलिप्पीन चुका रहा है। फिर न्यूक्लियर प्लाण्ट का क्या हुआ ? मार्कोस को जनता ने भगा दिया। उसके स्थान पर श्रीमती एक्विनो आ गयी। उसने वैज्ञानिकों को कहा—इस न्यूक्लिअर प्लाण्ट के विषय में क्या किया जा सकता है, देखिए। वैज्ञानिकों ने कहा, हम मार्कोस को बराबर कहते रहे कि यहाँ पारमाण्विक संयन्त्र लगाना ठीक नहीं; यह सारा क्षेत्र भूकम्प- प्रभावित है। अर्थात् यहाँ भूचाल आता रहता है, अतः यहाँ कोई भी बड़ा निर्माण करना जोखिम भरा है। ऐसी स्थिति में न्यूक्लियर प्लाण्ट का विचार ही छोड़ देना पड़ा। इस प्रकार अणुभट्टी तो लगी नहीं, लेकिन अमेरिका से लिये गये दो अरब डॉलर के ऋण का सूद तीन लाख पचपन हजार डॉलर प्रतिदिन फिलिप्पीन आज भी चुका रहा है।

अब सोचें कि यह सौदा क्या फिलिप्पीन के विकास के लिए हुआ था ? तब आप देखेंगे कि राज्यकर्ता और विदेशी पूँजी की साँठगाँठ से क्या-क्या अनर्थ हो सकते हैं।

इसी प्रकार का एक और उदाहरण देता हूँ। खाड़ी युद्ध (गल्फ वार) के समय अरब सरकार का अभिनन्दन हमारे यहाँ के समाचार-पत्रों ने भी किया था। क्यों ? क्योंकि उनका ११३ अरब डॉलर का कर्जा माफ किया गया था। यह एक कूटनीतिक कहानी (डिप्लोमेटिक हिस्ट्री) है, ऐसा कहा गया था। अमेरिका चाहता था कि इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के विरुद्ध सारे अरब देश उसके पक्ष में हों। सऊदी अरब और मिस्र (ईजिप्ट) आदि देश सद्दाम का साथ न दें, यही थी अरब देशों का कर्जा माफ करने में अमेरिका की चाल। इसीलिए अमेरिका ने ११३ अरब डॉलर का कर्जा अरब देशों का माफ कर दिया और इसीलिए मिस्र की सेना अमेरिका के

नेतृत्व वाली संयुक्त सेनाओं में शामिल थी। लोगों ने समाचार-पत्रों में इन दोनों ही बातों को पढ़ा था; लेकिन दोनों बातों का परस्पर संबंध है, यह समाचार-पत्र नहीं बताते।

कर्ज की मृग-मरीचिका

इतना गलत प्रचार होता है, जैसे—हमारे वित्त मंत्री विदेशों से ५००० (पाँच हजार) करोड़ डॉलर का कर्ज ले आते हैं, सर्वसाधारण जनता यह समझती है कि अब इस धन से हमारे देश का पर्याप्त आर्थिक और औद्योगिक विकास होगा। लेकिन जनता यह नहीं जान पाती कि इनकी कुछ शर्तें भी रहती हैं। इसमें उसी आईटम पर पहले जो कर्ज लिया था, उस कर्ज की जो किश्तें देनी होंगी और जो ब्याज बकाया होगा वह काट लिया जाता है। यदि मान लिया जाय कि पहले के ऋण की किश्तें और उस पर व्याज की राशि सब ३५०० करोड़ डॉलर होते होंगे तो उतने तो पहले ही काट लिये गये, शेष रहे १५०० करोड़ डॉलर। लेकिन वह राशि भी मिलने में कठिनाई यह आती है कि उनके यहाँ विज्ञान और प्रोद्यौगिकी के क्षेत्र में तेजी से प्रगति हो रही है, इस कारण उनकी प्रविधि (तकनीक) तेजी से बदलती रहती है। इस समय जो टेक्नोलॉजी (प्रौद्योगिकी) है, वह छः मास-एक वर्ष में कालबाह्य (आउट ऑफ डेट) हो जाती है। उसके स्थान पर नयी प्रविधि (तकनीक) लानी पड़ती है। और जब नयी प्रविधि का आविष्कार होता है तो पुरानी प्रविधि की मशीनरी का क्या करें, यह उनकी समस्या होती है। आज के यन्त्र (मशीनरी) गोदामों में जंग खाने के लिए तो नहीं रखे जा सकते। आखिर उस तकनीक के विकास में भी लाखों डॉलर खर्च हुए हैं। इसलिए ऐसी कालबाह्य मशीनरी उस कर्जे के अन्तर्गत भेजने की शर्तें ऋण के समझौते में सम्मिलित रहती हैं। अर्थात् शेष बचे १५०० करोड़ डॉलर में विकासशील देश के मत्थे वह बेकार हो रही मशीनरी मढ़ी जाती है। यह नहीं देखा जाता कि उस देश के लिए ऐसी मशीनरी की उपयोगिता

है भी या नहीं।

प्रौद्योगिकी–आयात की त्रासदी

हमारे प्रधानमंत्री ने कहा था कि इक्कीसवीं सदी का स्वागत करने के लिए हम 'अप-टु-डेट' साइन्स और टेक्नीक (अद्यतन विज्ञान और प्रविधि) का आयात करेंगे। किन्तु साइन्स और टेक्नोलॉजी कभी स्थायी रूप से अप-टु-डेट होती नहीं। उसमें तो निरंतर प्रगति होती रहती है। और वे पूँजीवादी देश भी ऐसे पागल नहीं हैं कि हम जहाँ-जहाँ चाहते हैं, वहाँ वे हमें साइन्स और टेक्नोलॉजी देंगे। हम चाहते हैं उनकी टेक्नोलॉजी सुरक्षा (डिफेन्स) में। हम तकनीक चाहेंगे जहाँ निर्यात (एक्सपोर्ट) के उद्योग हैं। परन्तु वहाँ वे देंगे नहीं। हम जहाँ नहीं चाहते, वहाँ वे देते हैं। वे उपभोक्ता-सामग्री (कंज्यूमर-गुड्स) के क्षेत्र में घुसते हैं, उपभोक्ताओं के बाजार में आते हैं जो हमारे हित में नहीं। सारांश यह कि वे अपनी नयी प्रौद्योगिकी जहाँ हम चाहते हैं वहाँ देने को तैयार नहीं होते और जो मशीनें हमें वे देते हैं वे उनके लिए निरुपयोगी अर्थात् पुरानी हो चुकी होती हैं। किन्तु वह पुरानी मशीनरी यहाँ आ जाने पर भी उसका पूरा लाभ हम नहीं उठा पाते क्योंकि उसका पूरा उपयोग करने के लिए जिस स्तर का विकास हमारे यहाँ अपेक्षित है, वह तो है नहीं। अतः लगभग ६०-७० प्रतिशत उसका उपयोग नहीं हो पाता। वे यन्त्र हमारे लिए सफेद हाथी या बोझ (लाएबिलिटी) हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस लेन-देन में जो गलत प्रचार चलता है उससे किस-किस प्रकार की भ्रांति फैलती है, यह बात उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है।

विदशी पूँजी–निवेश का झाँसा

भारतीय मजदूर संघ और भारतीय किसान संघ ने जब यह आवाज उठायी कि विदेशी पूँजी-निवेश (फॉरेन इन्वेस्टमेंट) गलत ढंग से हो रहा है तो समाचारपत्रों ने इस बात को लेकर यह प्रचार किया ये भा० म० सं० और भा० कि० सं० वाले दकियानूसी हैं। ये नहीं जानते कि दुनिया

२१वीं शताब्दी में जा रही है। ये लोग देश को १५वीं सदी में ढकेल ले जाना चाहते हैं। जब विकसित देश हमारे देश में पूँजी लगा रहे हैं, तो इससे देश का लाभ ही होगा। इसके बिना देश प्रगति कैसे करेगा ? देश महान् कैसे होगा? इत्यादि। किन्तु ये समाचारपत्र यह नहीं बताते कि विदेशी पूँजी प्रत्येक देश में लगायी तो जाती है, पर उन देशों में और हमारे देश में विदेशी पूँजी-निवेश के प्रकार क्या हैं ? विकसित देशों द्वारा जो पूँजी-निवेश विकासशील देशों में होता है, वह निवेशकर्ता देश की शर्तों पर ही तो होता है। यह ठीक है कि सिद्धान्तः समझौते समानता के आधार पर, आदान-प्रदान की भूमिका से ही होते हैं, जिनमें कुछ बातें दोनों को छोड़नी पड़ती हैं, लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि ऋणदाता देश अपने देश के हितों को केन्द्र बनाकर अपनी शर्तों पर समझौते करते हैं जबकि हमारी सरकार ने आज तक जितने भी समझौते किये हैं, हमारी समझ में नहीं आता कि राष्ट्रीय हित को हानि पहुँचाने वाली बातें ही प्रत्येक बार क्यों स्वीकार की गयीं ? हमारे विदेशी सहयोग समझौते (फॉरेन कोलेबरेशन एग्रीमेंट्स) पढ़ने पर, समझ में नहीं आता कि इतनी गलत बातें आखिर क्यों स्वीकार की गयीं ? कौन-सी ये विवशताएँ थीं ? राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर और हमारी शर्तों पर आज तक कोई समझौता किया गया हो, यह देखने को नहीं मिलता। प्रत्येक समझौता हमारे राष्ट्रीय आत्मसम्मान के आत्मसमर्पण का दस्तावेज ही है। आखिर हमारी ओर से समझौता-वार्ता में भाग लेनेवालों ने ऐसा क्यों किया ? क्यों किया, यह अब बताने की आवश्यकता नहीं। आज तो बिल्कुल ही नहीं, क्योंकि बोफोर्स घोटाले के बाद उससे भी बड़ा शेयर घोटाला काण्ड हो गया है। यह समझ लेना भी गलत है कि जो वार्ता करने जाते थे उनकी कुछ मजबूरियाँ थीं। कारण, समझौता वार्ता में कोई किसी पर उपकार नहीं करता। हमारे लिए लेना आवश्यकता थी, तो देनेवाला भी तो किसी लेनदार की ही खोज में था। अन्यथा वे देते किसलिए ? वास्तव में बात तो यह थी कि हमारे लोग खरीद लिये जाते थे, इस कारण समझौता करने जाने वाले हमारे

प्रतिनिधियों ने राष्ट्रहित की बलि देने में कभी हिचकिचाहट नहीं दिखायी।

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी-नीति बने

प्रौद्योगिकी के विषय में आज एक भ्रांति फैली है कि विकसित देशों की सारी टेक्नोलॉजी अच्छी है। क्या यह सही है ? हम लोगों ने कहा, राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी-नीति विकसित होनी चाहिए। उसके अंतर्गत चार बातें आनी चाहिए :

१. हमारे प्रौद्योगिकीविद् (टेक्नोलॉजिस्ट) दुनियाभर की टेक्नोलॉजी का अध्ययन करें और उनमें से यह निर्णय किया जाय कि कहीं की भी प्रौद्योगिकी का कौन सा भाग ऐसा है जिसे ज्यों का त्यों अपना लेना राष्ट्रीय हित में होगा--जिसे कहा जाता है आत्मसात् (एडॉप्ट) करना।
२. कौन सा भाग ऐसा है जिसमें कुछ संशोधन करके लिया जा सकता है—जिसे रूपान्तरण (मोडिफिकेशन) कहा जाता है।
३. कौन-सा भाग ऐसा है जिसे अस्वीकार (रिजेक्ट) करना होगा। हमारी समस्या बेरोजगारी की है और उनकी समस्याएं उत्पादन (प्रोडक्शन) से संबन्धित। अतः हमारे देश के लिए जो अनुकूल नहीं है और जिसे अस्वीकार कर देना ही उचित है, ऐसे भागों की पहचान करना।
४. कौन से क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ उनकी टेक्नोलॉजी उपलब्ध नहीं है। उसमें हमें अपनी प्रौद्योगिकी विकसित करनी होगी, जैसे—हमारा हस्त-शिल्प उद्योग (हैण्डीक्राफ्ट्स)।

इन चार बातों का विश्लेषणात्मक विचार होना चाहिए और इसी आधार पर राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी-नीति विकसित की जानी चाहिए। लेकिन हम जानते हैं आज की सरकार इन सब पर विचार नहीं करेगी।

सरकार यह जो प्रचार कर रही है कि पश्चिमी देशों की समस्त प्रौद्योगिकी अच्छी ही है, वह गलत है। पश्चिमी देशों के लिए तो उनके विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास ही प्रगति है। किन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उनके विज्ञान और उनकी प्रौद्योगिकी का विकास

प्रगति है या नहीं, इस विषय में वहाँ के वैज्ञानिकों के मनों में संदेह हैं। उदाहरण देखिए जेनेटिक्स का, जिसे अपने यहाँ प्रजनन शास्त्र कहते हैं। उन्होंने घोषणा की थी कि उनका शास्त्र २०४० ई० तक मनचाहे आकार-प्रकार, रंग-रूप, ऊँचाई-चौड़ाई वाले मनुष्य का निर्माण करने में सफलता प्राप्त कर लेगा। जेनेटिक्स की सबसे बड़ी प्रयोगशाला (लेबोरेट्री) सिएटल में है। जुलाई १९७९ में उस प्रयोगशाला में किये जा रहे प्रयोगों में एक स्थिति ऐसी आयी कि एक नये जीव के निर्माण की सम्भावना दिखने लगी। ऐसी स्थिति में म्यूनिसिपल कार्पोरेशन (नगर-निगम) की अनुमति लेनी पड़ती है। वैज्ञानिकों के द्वारा अनुमति माँगी जाने पर कार्पोरेशन ने यह पूछा कि इसकी निर्मिति के परिणाम क्या होंगे ? उन्होंने कहा—यह बताना कठिन है; हो सकता है बिल्कुल निरुपयोगी हो और यह भी हो सकता है कि विश्व की एक-तिहाई जनसंख्या के विनाश का कारण बने।

कार्पोरेशन ने अनुमति नहीं दी। उन्होंने कहा कि जब आप ही ऐसी संभावना बता रहे हैं तो हम कैसे जोखिम उठा सकते हैं ? वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगशाला की दीवारें 'फूल प्रूफ' करने का आश्वासन देने पर कार्पोरेशन ने कहा कि आप प्रयोगशाला में जीवित रहेंगे, इसकी क्या गारण्टी है ? अनुमति नहीं दी गयी। फलस्वरूप कार्पोरेशन के विज्ञान-विरोधी होने का प्रचार किया गया।

सेवा-व्यापार का अमेरिकी प्रपंच

हमारे यहाँ तीन अभिकरण (एजेंसियाँ) इसी प्रकार धुआँधार प्रचार किया करते हैं -- आई० एम० एफ०, वर्ल्ड बैंक, और मल्टी-नेशनल कम्पनीज। अब इसी संदर्भ में डंकेल प्रस्ताव पर विचार करें। डंकेल एक संस्था के महानिदेशक (डाइरेक्टर जनरल) का नाम है। उस संस्था को जेनेरल एग्रीमेण्ट ऑन टैरिफ एण्ड ट्रेड (गैट) अर्थात् 'शुल्क और व्यापार पर सामान्य अनुबन्ध' कहा जाता है। इसकी स्थापना १ जनवरी १९४८ में हुई। स्थापना के समय कहा गया कि अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में परस्पर सुविधा हेतु इसे स्थापित किया गया है। इसमें केवल एक ही विषय था:

माल का अन्तरराष्ट्रीय व्यापार। विकसित देशों के हित के लिए इसका उपयोग होता था। इस कारण १९७३ में विकासशील देशों के प्रतिनिधियों ने एकत्रित होकर इस व्यापार को समानता के आधार पर लाने की माँग की। इसका प्रत्युत्तर देने के लिए विकसित देशों के प्रतिनिधियों ने १९८१ में मेक्सिको में एकत्र होकर विकासशील देशों की माँग को ठुकरा दिया। फिर १९८६ में वार्ता (निगोशिएसन्स) का आठवाँ चक्र प्रारम्भ हुआ। पहले की वार्ताओं में केवल पण्य वस्तुओं के अन्तरराष्ट्रीय व्यापार की चर्चा हुई थी और उसमें केवल शुल्क घटाने (टैरिफ-रिडक्शन) का ही विचार था। आठवें चक्र में एक विचित्र बात सामने आयी कि अभी तक हम निगोशिएसन्स में वस्तुओं पर विचार करते थे लेकिन अब हम सेवा-व्यापार (ट्रेड इन सर्विसेज) को भी बातचीत की मेज पर लायेंगे। सेवाओं (सर्विसेज) में आती हैं वित्तीय संस्थाएं, जैसे -- बैंक, बीमा, दूर-संचार (टेलिकम्युनिकेशन्स), परिवहन (ट्रान्सपोर्ट), शिक्षा आदि। ये क्यों लाये गये ? अब तक तो केवल सामग्री या वस्तुओं का व्यापार था, अब सेवाओं को क्यों लाया गया ? इसके पीछे एक कारण था। १९८६ तक अन्तराष्ट्रीय व्यापार में अमेरिका प्रथम स्थान पर था और उसकी स्पर्धा की क्षमता भी अधिक थी। १९८६ के बाद कुछ विषयों (आईटम्स) में अमेरिका पिछड़ने लगा तो उसने सोचा कि अब नया क्षेत्र खोजना चाहिए, और उसने यह ट्रेड-इन-सर्विसेज का नया प्रपंच रचा।

हमारे नेता हमें समझाते हैं कि डंकेल प्रस्ताव में कुछ बातें यदि हमारे अहित की होंगी तो उन्हें वार्ता की मेज पर बदलवा लेंगे। उन्हें पता ही नहीं कि यहाँ भाषण देना अलग बात है और 'निगोशिएसन्स टेबल' पर वार्ता में अपनी बात मनवाना अलग बात है। वहाँ तो 'एटमॉस्फेयर ऑफ एव' (भय-विस्मय या दहशत का वातावरण) होता है। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों के प्रतिनिधियों की संख्या अधिक होते हुए भी वे वहाँ अपनी बात रखने का साहस ही नहीं जुटा पाते। केवल अनौपचारिक (इनफॉर्मल) बैठकों में वे कुछ बोल पाते

हैं। सामान्य सभा (जेनरल मीटिंग्स) में तो वे मुँह भी नहीं खोल पाते। सेवा-व्यापार (ट्रेड-इन-सर्विसेज) का जब विषय आया, अनौपचारिक बैठकों में, तो विकासशील देशों के प्रतिनिधियों ने कहा कि विषय नया है, हमें इस पर विचार करने दीजिए, तो विकसित देशों के प्रतिनिधियों ने कहा कि इसमें सोचने की क्या बात है ? विकासशील देशों ने पूछा कि सेवाओं से अभिप्राय क्या है ? ट्रेड-इन-सर्विसेज अर्थात् क्या ? इनको परिभाषित करना चाहिए। विकसित देशों ने कहा कि इसमें तो तीन-चार वर्ष लग जायेंगे और संसार इतनी तेजी से आगे जा रहा है कि तीन-चार वर्ष तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। इसके बजाय हम अनुबंध कर लें, फिर परिभाषा विकसित होती रहेगी। कुछ देशों ने कहा कि आपके प्रस्ताव का हमारे देशों पर क्या प्रभाव होगा, यह हम यहाँ नहीं बता सकते। उसके लिए सांख्यिकी (स्टैटिस्टिक्स) की आवश्यकता होगी, तो आँकड़े (स्टैटिस्टिक्स) एकत्र करने के लिए तो आप हमें समय देंगे ? इस पर विकसित देशों का तर्क था कि ये आँकड़े एकत्र करने में चार-पाँच वर्ष लग जायेंगे। इतने समय तक दुनिया रुक नहीं सकती। इसलिए हम 'एग्रीमेण्ट' कर लें और बाद में आप अपने आँकड़े एकत्रित करते रहना। और, विकासशील देशों को वार्ता आगे बढ़ाने के लिए विवश किया गया। ऐसा दबाव का वातावरण होता है वहाँ।

लेकिन थोड़े ही समय बाद अमेरिका ने यह अनुभव किया कि ट्रेड-इन-सर्विसेज के भी कुछ विषयों (आईटम्स) में वे अब पिछड़ रहे हैं। यह देखकर वे घबरा गये और वे तीन नये विषयों को वार्ता की मेज पर ले आये। ये थे:--

१. व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का व्यापार (ट्रेड इन ट्रेड रिलेटेड इंटेलेक्चुअल प्रोपर्टी राइट्स),
२. व्यापार सम्बन्धी निवेश के उपायों का व्यापार (ट्रेड इन ट्रेड रिलेटेड इनवेस्टमेंट मेजर्स),

३. कृषि (एग्रीकल्वर)।

१.व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकार का व्यापार

इंटेलेक्च्युअल प्रोपर्टी राइट का अर्थ होता है -- बौद्धिक सम्पदा-अधिकार। बौद्धिक सम्पदा पर अधिकार होता है एकस्वाधिकार (पेटेण्ट) के द्वारा। जब कोई एकस्वाधिकार (पेटेण्ट) लेता है तो उसे बौद्धिक सम्पदा माना जाता है। जैसें, उसने किसी वस्तु या पदार्थ की खोज की—आविष्कार किया -- और उसको अपने नाम पर पेटेण्ट करवा लिया तो फिर दूसरा व्यक्ति वह काम नहीं कर सकता। इसी को पेटेण्ट या एकस्वाधिकार कहते हैं। हमारे देश में १९७० में पेटेण्ट का विधान (कानून) बना था। उसे बहुत सोच-समझकर बनाया गया था। विधान बनने के पूर्व दो बार उस पर संसदीय समिति ने विचार किया। फिर संयुक्त संसदीय समिति ने विचार किया। हमारे यहाँ के इस विधान में वे दो प्रकार के संशोधन चाहते हैं। हमारे यहाँ के कानून में पेटेण्ट का एकाधिकार केवल पाँच से सात वर्ष तक दिया जाता है। अमेरिकी कानून में २० से २५ वर्ष तक दिया जाता है। वे हमारे यहाँ भी २० से २५ वर्ष तक का अधिकार चाहते हैं।

भयावह पेटेण्ट कानून

हमारे यहाँ विशेष बात यह है कि प्रक्रिया (प्रोसेसिंग) का पेटेण्ट दिया जाता है। उनके यहाँ उत्पाद (प्रोडक्ट) का पेटेण्ट कराया जाता है। उदाहरणतः मान लीजिए गुरुकुल कांगड़ी ने च्यवनप्राश बनाया। उसे बनाने की उनकी अपनी एक विशेष प्रक्रिया और फार्मूला है। तो गुरुकुल कांगड़ी च्यवनप्राश की उस प्रक्रिया का 'पेटेण्ट' ले सकते हैं। अर्थात् उस प्रक्रिया से दूसरा कोई च्यवनप्राश नहीं बना सकेगा। इस प्रकार हमारे यहाँ एकस्वाधिकार प्रक्रिया का होता है। यदि कोई अन्य उस प्रक्रिया से च्यवनप्राश बनायेगा तो उसे जेल की हवा खानी पड़ेगी। किन्तु यदि कोई किसी दूसरी प्रक्रिया से च्यवनप्राश बनाये तो वह भी उसे बाजार में ला सकता है, बेच सकता है। उस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि

हमारे यहाँ उत्पाद का नहीं, प्रक्रिया का पेटेण्ट है। लेकिन अमेरिका में प्रोडक्ट (उत्पाद) का पेटेण्ट है। इसका अर्थ हुआ कि एक बार आपने किसी प्रक्रिया से च्यवनप्राश तैयार किया और उसे पेटेण्ट करवा लिया तो फिर दूसरे किसी के द्वारा च्यवनप्राश बनाये जाने पर वह दण्डनीय अपराध होगा, चाहे वह दूसरी किसी भी प्रक्रिया से उसे तैयार करे। यह कितनी खतरनाक बात है!

इसमें और भी एक बात है कि हमारे यहाँ के पेटेण्ट कानून में वृक्षों के पेटेण्ट का प्रावधान नहीं है और पशुओं का भी पेटेण्ट नहीं है। ये राक्षस पशुओं का और वृक्षों का भी पेटेण्ट चाहते हैं। हमारे यहाँ की औषधीय जड़ी-बूटियाँ ये लोग पहले ही अपने देश में ले जा चुके हैं। अब वे कहते हैं -- हमारी लेबोरेट्री (प्रयोगशाला) में हमने इन जड़ी-बूटियों पर ट्रीटमेण्ट (उपचार) किये हैं, इसलिए यह प्रोडक्ट (उत्पाद) हमारा हो गया, हम इसका पेटेण्ट लेते हैं। अब आप इस वनस्पति से हिन्दुस्थान में दवा नहीं बना सकते। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारा औषध-निर्माण उद्योग (फार्मास्यूटिकल्स इण्डस्ट्री) संसार भर में प्रथम स्थान पर है। हमारे यहाँ निर्मित दवाएं अमेरिका के बाजार में अमेरिका में निर्मित दवाओं से भी कम मूल्य में बेची जाती हैं।

अब केवल ओषधियों की ही बात नहीं है। आपके यहाँ का यदि गेहूँ-चावल वे ले जाते हैं तो वे कहेंगे कि हमने अपनी प्रयोगशाला में उस पर प्रयोग किये हैं, इसलिए अब आप गेहूँ-चावल भी पैदा नहीं कर सकते। हमारे यहाँ का किसान फसल आने पर अगली फसल के लिए भी उसी में से बीज के लिए रख लेता है और उसी से दूसरी बार की फसल लेता है। लेकिन अब वे यह कहेंगे कि हमने अपनी प्रयोगशाला में उन बीजों का उपचार (ट्रीटमेण्ट) किया है और हमने उसका प्रोडक्ट पेटेण्ट लिया है। हमारा किसान अपने बीज से खेती नहीं कर सकेगा, बीज उनसे खरीदना होगा। यदि उनके पास यह जानकारी पहुँचती है कि भारत का

किसान अपने ही बीज का प्रयोग कर खेती कर रहा है तो अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कंपनी भारत सरकार को केवल एक पत्र द्वारा, भारत में अपने ही खेत का बीज बो कर खेती करने वाले किसानों को दण्डित करने को लिखेगी। सामान्य कानून के अनुसार तो आरोप करने वाले को अपना आरोप सिद्ध करना पड़ता है, इसे 'ओनस' (दायित्व) कहते हैं। किन्तु डंकेल प्रस्ताव में इसके विपरीत प्रावधान है। आरोप करने वाली कंपनी की आरोप सिद्ध करने की जिम्मेवारी नहीं होगी। जिन पर आरोप लगाया जायेगा, उन किसानों को यह सिद्ध करना होगा कि हमने अपने बीजों का उपयोग नहीं किया। यदि वे सिद्ध न कर सकें तो वे हमारी ही सरकार के द्वारा दण्डित किये जायेंगे। पेटेण्ट के संबंध में यही कानून सब पर लागू होगा। हमारे वैज्ञानिक रासायनिक खाद का निर्माण नहीं कर सकेंगे, यहाँ तक कि हमारी अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी नहीं।

हमारी सम्प्रभुता को चुनौती

डंकेल का कानून हमारे देश के किसानों पर लागू हो, इसे हम लोग हमारी सार्वभौम सत्ता के लिए चुनौती मानते हैं। किसान संघ के माध्यम से हम इसी बात पर सरकार का विरोध भी कर रहे हैं। यह हमारी सम्प्रभुता पर आक्रमण है।

अब इसका उदाहरण देखिए—भारत में पैदा हुए अनाज का समर्थन-मूल्य क्या रहे, इसके बारे में हमारा सरकार से झगड़ा है। हमारा कहना है कि सरकार भारत की है, हम भारत के हैं, हम अपना झगड़ा आपस में निपटा लेंगे। आज डंकेल समझौता हमारी सरकार को आदेश देता है। वह हमारी सरकार को 'डिक्टेट' करता है कि सहायता-राशि (सबसिडी) न बढ़ायी जाय। दूसरी ओर अमेरिका में पिछले दो वर्षों में उन्होंने किसानों की 'सबसिडी' बढ़ायी है और हमारे ऊपर सबसिडी बंद करने के लिए दबाव डाले जा रहे हैं। हमें कहा जा रहा है मुक्त व्यापार के लिए, और अमेरिका में संरक्षणवाद (प्रोटेक्शनिज्म) चला रहे हैं, व्यापार

को संरक्षण दिया जा रहा है। फिर बफर स्टॉक भण्डारण के लिए जो अनाज खरीदना पड़ता है उसे बाजार भाव (मार्केट प्राइस) पर ही खरीदने का हम पर बंधन है और यह भी कि जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली है उसका लाभ पोषण-स्तर के नीचे जो लोग हैं, केवल उन्हीं को मिले।

अब उनके ये सुझाव अच्छे या बुरे हैं, इसकी चर्चा करना हम अभी अनावश्यक समझते हैं। सरकार की आज नीति खराब होगी तो हम उसके लिए झगड़ा कर लेंगे। सरकार भारत की है, हम भारत के हैं और किसान भी भारत के हैं। लेकिन हमारी कृषि-नीति विदेश में बैठा हुआ कोई व्यक्ति या संस्था निर्धारित करे, यह तो हमारी सम्प्रभुता को ही चुनौती होगी।

अभी एक नेता हमें यह समझाने आये थे कि हमारे यहाँ की वैज्ञानिक खोजों में उन्होंने जो बंधन लगाये हैं, उनका आधार नैतिक है। इन साम्राज्यवादी देशों के हाथ बहुत लम्बे हैं। इनके जाल में कौन-कौन हैं, इसकी सूची बनाने के बजाय कौन-कौन नहीं हैं इसकी सूची बनाना सरल होगा। उस 'किसान-नेता' ने सार्वजनिक रूप से कहा कि हमारे वैज्ञानिक चोर हैं। बेचारे पश्चिमी देशों के वैज्ञानिक पैसा खर्च करते हैं, अनुसन्धान करते हैं; उनके उन आविष्कारों को हमारे वैज्ञानिक चुरा लाते हैं और पैसा कमाते हैं। उस 'महान', किसान-नेता के ये वचन समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित हो चुके हैं। उसी नेता के एक शिष्य ने, जो अर्थशास्त्र के प्राध्यापक हैं, कहा -- हमारे नेताजी का कहना है कि आप अनैतिकता को बढ़ावा देना चाहते हैं। मैंने कहा कि हमारे वैज्ञानिक चोर हैं या नहीं और उनके वैज्ञानिक परिश्रमी, उदार और प्रतिभावान हैं या नहीं, यह न तो मैं जानता हूँ न आप, और न ही आपके नेता जानते हैं। लेकिन फिर भी हम आपकी बात मान लेते हैं कि हमारे वैज्ञानिक चोर हैं और उन्हें नैतिकता का पालन करना चाहिए। आपके नेताजी का यह कहना कि उन वैज्ञानिकों को प्राणदण्ड भी देना चाहिए, यहाँ तक भी मैं मान लेता हूँ। अब आपसे थोड़ा मतभेद इस बात पर है कि हमारे वैज्ञानिक

को दण्ड देने का अधिकार किसके पास हो ? यह मेरा प्रश्न है। दण्ड देने का अधिकार भारत सरकार को हो, भारत के न्यायालय के पास हो, जनता को हो। ऐसे अपराधों को निपटाने के लिए अलग से कोई व्यवस्था की जाये। किन्तु भारत से बाहर के किसी व्यक्ति या संस्था को ऐसा अधिकार देना उचित नहीं है। वह तो भारत की सम्प्रभुता पर आक्रमण के समान है। हमने कहा कि यह आक्रमण हम सहन नहीं करने वाले हैं।

टूटती अर्थव्यवस्था को बचाने के छल-छद्म

इस प्रकार के विचित्र तर्क डंकेल प्रस्ताव के पक्ष में दिये जाते हैं। इसकी पृष्ठभूमि हमें समझनी होगी। वास्तविकता यह है कि उनकी अर्थव्यवस्था आज टूट रही है। वे अपना आर्थिक साम्राज्य खड़ा करना चाहते हैं, लेकिन अपने बल पर नहीं। वे स्वयं डूब रहे हैं, इसलिए विकासशील देशों की प्राणवायु (आक्सीजन) के शोषण से वे अपने प्राण बचाना चाहते हैं। विकासशील देशों की कृषिमंडियों पर कब्जा करेंगे, अपने कृषि-उत्पादों से उनकी मंडियाँ पाट देंगे। इस प्रकार इन देशों के शोषण के द्वारा कुछ अधिक समय तक जीवित रहें, यही उनका प्रयास है। तृतीय विश्व के देशों का शोषण करते हुए, उन्हें मारकर भी अपने को जीवित रखने का यह राक्षसी प्रयोग है। यह बड़े ही खेद की बात है कि हमारे देश के विचारवान् लोग इस षड्यंत्र को नहीं समझ रहे।

इस प्रकार यदि हमारी कृषि और हमारी कृषि उपज मंडियाँ उनके हाथ में चली जाती हैं, प्रोडक्ट पेटेण्ट वे ले लेते हैं, खाद्य प्रसंस्करण (फूड प्रोसेसिंग) आदि सभी कुछ उनके हाथ में जाने वाला है, इस पेटेण्ट के साथ ही हमारे ऊपर ऐसे बंधन लगने वाले हैं तो हम स्वतंत्र, सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न राष्ट्र कहाँ रहेंगे ?

डंकेल ने कहा है कि आपके देश में अनाज का विपुल मात्रा में उत्पादन होने के बाद भी आपको २.२ प्र० श० से ३.३ प्र० श० अनाज का आयात करना ही होगा। हम पूछते हैं -- यह बताने वाले आप होते कौन हैं ?

हमारे ऊपर जबरन आयात करने का बंधन लगाने वाले आप कौन होते हैं ? हमें यदि इस प्रकार की शर्तें मानने के लिए विवश होना पड़ता है तो इसका अर्थ है कि उस सीमा तक हमारी सम्प्रभुता पर आक्रमण हुआ है।

२.व्यापारिक निवेशों के उपाय का व्यापार

इसी प्रकार की अब दूसरी बात है पूँजी-निवेश-गतिविधियों की। पहले विदेशी व्यापार पर बन्धन थे। विदेशी पूँजी कितनी और कहाँ लगे, इसके लिए नियम थे। देशी धन्धों को संरक्षण दिया जाता था। अब तो विदेशी पूँजी के लिए मुक्त द्वार हो गया है। आपने टॉमको और गोदरेज के उदाहरण (नाम) सुने होंगे। आज भारत के सभी क्षेत्रों में विदेशी पूँजी लगाने वालों को छूट दी गयी है। जहाँ टॉमको और गोदरेज जैसी बड़ी कंपनियाँ उनके सामने नहीं टिक सकीं, क्या हमारे लघु उद्योग इस विदेशी आर्थिक आक्रमण के सामने टिक पायेंगे ? हमारा करघा उद्योग, हमारे कुटीर उद्योग, सभी कुछ चौपट हो जायेंगे। हमारा सारा औद्योगिक क्षेत्र बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में चला जायेगा। उनके एकस्वीकरण (पेटेण्टाइजेशन) से हमारे यहाँ अनुसन्धान के लिए कोई क्षेत्र ही नहीं बचेगा। प्रयोगशालाएं बंद होंगी, वैज्ञानिक बेकार होंगे, हमारी कृषि चौपट होगी। इस प्रकार सम्पूर्ण देश आर्थिक दासता में जकड़ दिया जायेगा।

सत्ताधारियों से गुप्त साँठ-गाँठ

एक बात और भी ध्यान में रखने की है कि उनका प्रचार अतिसूक्ष्म और दूरगामी परिणाम करने वाला होता है। हमारी सरकार ने अभी कहा कि डंकेल प्रस्ताव के संबंध में अभी हमने अपना मत-निर्धारण (माइण्ड मेकअप) नहीं किया है, निर्णय नहीं लिया है। आप सबसे बात करेंगे, सबको विश्वास में लेंगे। सरकार ने यह भी कहा है कि हमने अभी डंकेल प्रस्ताव स्वीकार नहीं किये हैं। किन्तु सरकार ने हस्ताक्षर न करते हुए भी डंकेल के प्रस्तावों को शनैः-शनैः मानना प्रारम्भ कर दिया है। सबसे पहले किसानों

को सबसिडी देना बंद करने की शर्त मान ली। किसानों के आन्दोलन के दबाव में आकर उसमें अभी थोड़ी ढील दी है। फिर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विषय में जो डंकेल ने कहा है वह अक्षरशः स्वीकार किया। डंकेल की शर्तें तो बजट में स्वीकार कर ली हैं, अब इस हस्ताक्षर न करने का क्या अर्थ रह गया है ?

हमें कुछ विकासशील देशों के देशभक्तों के साथ मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। देश थे -- सिंगापुर, मलयेशिया, फिलिप्पीन और श्रीलंका। उन्होंने कहा -- अब हमारी समझ में आया कि विदेशी पूँजी और हमारे देश के नेताओं की पहले से ही साँठ-गाँठ थी। आर्थिक समझौतों के विषय में जनता को अन्धेरे में रखा गया। डंकेल के साथ समझौते के ब्यौरे की जानकारी लोगों को कभी न कभी तो होगी ही और वह ज्ञात होने पर जनता कहीं विद्रोह न कर बैठे, इसलिए उन्होंने डंकेल से अनुरोध किया है कि हम तो आपकी सारी शर्तें मानने वाले हैं किन्तु यह धीरे-धीरे ही जनता के गले उतर सकेगा। जैसे पोस्टकार्ड पाँच पैसे का, फिर १५ पैसे का। धीरे-धीरे लोग अभ्यस्त हो जाते हैं। जैसे किसी को कड़वी दवा पिलाते समय एक बार शहद, फिर दवा, फिर शहद -- इस क्रम से पूरी खुराक ही पिलायी जाती है। ऐसा शनैः-शनैः करना पड़ेगा, अन्यथा हमें ही जनता उखाड़ फेंकेगी और फिर आने वाली सरकार आपकी बातें मान ही लेगी इसकी कोई गारण्टी नहीं।

डंकेल की धूर्तता

डंकेल ने एक चाल चली है। जहाँ आई० एम० एफ०, वर्ल्ड बैंक, तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ हुए अनुबन्धों में नयी संसद् या नया सत्ताधारी दल परिवर्तन कर सकते हैं, वहाँ डंकेल के साथ हुए अनुबन्ध में सत्ता में आनेवाला दूसरा कोई भी दल, चाहे वह भाजपा ही क्यों न हो, उसके स्वरूप में अर्धविराम का भी परिवर्तन नहीं कर सकेगा। संसद् को भी इसका अधिकार नहीं होगा। इस प्रकार भावी पीढ़ियों को

भी आर्थिक दासता के शिंकजे में जकड़ देगा यह डंकेल प्रस्ताव। समाचारपत्र यह बात नहीं बताते। अधिकांश लोगों को यह पता ही नहीं है कि एक बार अनुबन्ध (एग्रीमेण्ट) होने के बाद उसे बदला नहीं जा सकेगा। वे समझते हैं कि भाजपा के सत्ता में आने के बाद हम सब बदल देंगे। हम आई० एम० एफ०, वर्ल्ड बैंक और मल्टीनेशनल्स के साथ हुए समझौतों को बदल सकते हैं, किन्तु 'गैट' को नहीं, और बदलना ही हो तो युद्ध के लिए तैयार होना होगा या आर्थिक बहिष्कार का सामना करना होगा।

देशभक्ति हो तो कुछ भी अशक्य नहीं

प्रसिद्ध उद्योगपति श्री घनश्यामदास बिड़ला ने एक बार कहा था कि हम अन्तरराष्ट्रीय संबंधों की बातें बहुत किया करते हैं, किन्तु मान लीजिए कि शेष दुनिया से हमारा संबंध टूट गया तो भी हमारी जनशक्ति इतनी है, हमारे साधन-स्रोत इतने हैं, हमारे पास प्रतिभावान् लोग इतने हैं कि भारत स्वयं एक विश्व है। व्यापारिक दृष्टि से भी अन्तरराष्ट्रीय संबंध टूट जाने के बाद भी हम अपना घरेलू बाजार (डोमेस्टिक मार्केट) चला सकते हैं। और यह भी सच है कि जापान और जर्मनी आज पुनः जो एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभरकर आये हैं वह सब राष्ट्रभक्ति-जागरण के कारण ही हो सका है। उन्होंने अपने लोगों में राष्ट्रभक्ति जागृत की थी। इसी प्रेरणा से लोगों ने अधिक कष्ट सहे, पेट काटकर बचत की और राष्ट्र की सम्पत्ति में वृद्धि की। हमारे यहाँ राष्ट्रभक्ति की कमी होने के कारण इस देश में लोग काम नहीं करना चाहते, बचत करना नहीं चाहते। राष्ट्रभक्ति का निर्माण होने पर राष्ट्र का प्रत्येक घटक सर्वतोभावेन राष्ट्र को वैभवशाली बनाने के लिए अधिकाधिक त्याग और कष्ट झेलने को प्रस्तुत हो जाता है।

राष्ट्रभक्ति जागृत होने पर कैसे चमत्कार होते हैं, इसका एक उदाहरण मैं जर्मनी का देता हूँ :

आज हम जिस गयी-बीती अवस्था में हैं, उससे भी खराब हालत

जर्मनी की थी। सन् १९१४ से १८ तक के प्रथम महायुद्ध में जर्मनी बुरी तरह परास्त हुआ था। उसके उद्योग नष्ट हो चुके थे। वह एक कृषि-प्रधान देश बन गया था। युद्ध के कारण जर्मनी एक ऋणग्रस्त देश बन चुका था और उस कर्ज की किश्तें भी नहीं चुका पा रहा था। लगातार १४-१५ वर्ष तक यह स्थिति बनी रही। यद्यपि हम उनके राजनीतिक तत्त्वज्ञान से सहमत नहीं हैं, फिर भी ऐसी आर्थिक दुर्गति से उबरने के लिए जर्मनी ने क्या किया था, यह देखना रोचक होगा क्योंकि केवल इसी से हमारा संबंध है। हिटलर ने सत्ताप्राप्ति के बाद एक निष्पक्ष अर्थशास्त्री डॉ० शेक्ट को अपना अर्थमंत्री बनाया। ये डॉ० शेक्ट बहुत बुद्धिमान् थे। जिन देशों के साथ पहला महायुद्ध वे लड़े थे और जिनके साथ दुबारा महायुद्ध लड़ने की आशंका थी, उन्हीं के ऋणभार से जर्मनी दबा हुआ था। उन्हीं देशों के प्रमुखों के पास जाकर डॉ० शेक्ट ने कहा कि क्या आप यह विश्वास करते हैं कि जर्मनी आज जिस प्रकार कृषि-प्रधान देश बन गया है, आपका कर्ज कभी चुका सकेगा ? उन राष्ट्र-प्रमुखों ने कहा कि है तो यह असंभव, लेकिन फिर इसका उपाय क्या है ? डॉ० शेक्ट ने कहा कि आप हमें और कर्ज दीजिए, उससे हम देश का औद्योगीकरण करके राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ायेंगे। वह कुछ हमारे राष्ट्र की उन्नति करने के काम में आयेगी और कुछ आपका कर्ज चुकाने में। उन राष्ट्र-प्रमुखों ने कहा कि यह हो तो सकता है, किन्तु आपको हमारी कुछ शर्तें माननी होंगी। उनकी शर्त थी कि हमारे द्वारा दिये जाने वाले कर्ज की एक पाई भी युद्धक शस्त्रों के निर्माण में खर्च नहीं होनी चाहिए, और शर्त का पालन किस प्रकार हो रहा है यह देखने के लिए पैसा देने वाले सब देशों के गुप्तचर जर्मनी में तैनात कर दिये गये। सन् १९३३ में हुए इस समझौते के बाद केवल छः वर्ष में जर्मनी ने सारा नक्शा ही बदल दिया। जर्मनी ने उद्योग प्रारम्भ किये। युद्धक शस्त्रों के निर्माण के कारखाने नहीं चलाये। जर्मनी को कर्ज देने वाले राष्ट्रों के गुप्तचर निरीक्षण कर रहे थे। उसमें से भी जर्मन राष्ट्र ने मार्ग किस प्रकार निकाला, इसका एक उदाहरण देखिए:

एक बाबा गाड़ी (बच्चों की गाड़ी) की फैक्टरी थी। वहाँ का एक मजदूर था। उसे पुत्र होने पर एक बाबा गाड़ी की आवश्यकता अनुभव हुई। वह अपनी फैक्टरी के विभिन्न विभागों से यह सोचकर एक-एक पुर्जा ले आया कि घर पर ही उन्हें जोड़कर एक बाबा गाड़ी बना लेंगे। रात में पति-पत्नी दरवाजा बंद करके बाबा गाड़ी बनाने जब बैठे तो किसी प्रकार से भी पुर्जे जोड़ने पर बाबा गाड़ी तो नहीं, राइफल ही बनती थी। केवल छः वर्षों में अर्थात् १९३९ में जर्मनी ने कर्ज देनेवाले राष्ट्रों को महायुद्ध की चुनौती दे डाली। प्रत्येक नागरिक में कितनी प्रखर राष्ट्रभक्ति रही होगी कि अनेक राष्ट्रों के गुप्तचरों के द्वारा कड़ी दृष्टि रखी जाने पर भी वह राष्ट्र युद्ध के लिए आवश्यक सिद्धता कर सका और एक दिन सूचना घोषित की गयी कि हिटलर एक निश्चित तिथि को महत्त्वपूर्ण घोषणा करेंगे। हिटलर ने उस दिन घोषणा कर दी कि हमारा राष्ट्र दिवालिया (इनसॉल्वेंट) हो गया है, किसी का एक पैसा भी हम नहीं दे सकते। इसका अर्थ हुआ कि लेना हो तो युद्ध करके ही ले सकते हो।

क्या हमारी ऐसी सिद्धता है ? इस प्रकार की प्रखर राष्ट्रभक्ति जनता में और प्रचण्ड इच्छाशक्ति सरकार में हो तो दोनों का परस्पर सहयोग होने पर हम इस आकण्ठ कर्ज की दलदल में से निकल सकते हैं।

अंत में एक बात और बताकर में अपना कथन पूरा करूंगा। लोगों को भ्रमित करने के लिए बहुत दिनों से एक कुतर्क दिया जा रहा है कि डंकेल प्रस्ताव में अनेक अनिष्ट बातें होंगी, किन्तु कुछ अच्छी भी तो होंगी, उनका भी तो विचार किया जाना चाहिए। मनुष्य को एकांगी विचार नहीं करना चाहिए, सन्तुलित विचार रखना चाहिए, हिन्दू मानस को यह तर्क तुरन्त प्रभावित करता है। सन्तुलित विचार की बात करने वालों से यदि यह पूछें कि आपने डंकेल प्रस्ताव पूरा पढ़ लिया है क्या ? तो कहते हैं— पढ़ा तो नहीं, किन्तु यह कुछ अतिवादी विचार दिखता है। लोग जब यह कहते हैं कि डंकेल प्रस्ताव में जो अच्छी बातें हैं, उन्हें ले लेना चाहिए, तब वे यह भूल जाते हैं कि यह ' पैकेज डील ' (एकमुश्त समझौता) है।

यह ठीक है कि इस डर से कि कहीं आज ही जनता विद्रोह करके वर्तमान राज्यकर्ताओं को हटाने को बाध्य न हो जाय, धीरे-धीरे पग बढ़ाये जा रहे हैं। इसके लिए विदेशी पूँजी और वर्तमान शासक साँठगाँठ करके धीरे-धीरे कुछ शहद फिर कड़वी दवा, फिर शहद चटा-चटाकर यह डंकेल प्रस्ताव लोगों के गले उतार रहे हैं, किन्तु यह है तो एक पैकेज डील। इसका अर्थ आप समझते हैं ? उदाहरण के लिए एक लड़का है, एक लड़की है। दोनों ही अति सुन्दर हैं, किन्तु लड़के को कूबड़ है। क्या आप लड़की को यह समझा सकते हैं कि तुम लड़के के सुन्दर चेहरे को स्वीकार करो और उसके कूबड़ को छोड़ दो। अरे, विवाह करना होगा तो दोनों बातों को स्वीकार करना पड़ेगा। डंकेल प्रस्ताव भी ऐसा ही पूरा एक पैकेज डील है। लोग इसे समझते नहीं। उन्हें भ्रमित किया जा रहा है।

अब इसे मैं यह कहकर यहीं समाप्त करता हूँ कि ये जो हमारे नेता आज कह रहे हैं कि धर्म को राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वे राजदण्ड पर धर्मदण्ड का अंकुश चाहते नहीं। उसी प्रकार वे अर्थनीति को भी धर्म से अनुशासित नहीं होने देना चाहते। यह धर्म का ही क्षेत्र है। "धर्मादर्थश्च कामश्च" -- ऐसा कहा गया है। इसलिए यह धर्म का ही दायित्व है कि हमारे देश की अर्थनीति कैसी चले। ❑

सावधान !

भारत यवन आक्रमणकारियों से अपने को लगभग मुक्त कर चुका था, अर्थात् दिल्ली की मुगलशाही कठपुतली मात्र रह गयी थी। उस ही समय इंगलैंड से अंग्रेज यहाँ व्यापारी बनकर आया और अपना जाल फैला दिया। उस समय का चित्र इस प्रकार अंकित है :--

लिये हाथ में बाट-तराजू, एक विदेशी फेरीवाला --
हमने देखा दीन-दुखी है, घर में ठौर उसे दे डाला।
यह लो खाना, यह लो पानी, यह लो विस्तर, यों समझाया;
देख हमारा वैभव भारी, उसके मन में पाप समाया।
गहरी निद्रा में सोते थे, हम सब अपने पैर पसारे;
चोर-उच्चकों का डर क्या था, द्वार खुले थे घर के सारे।
देख हमें यों निर्भय सोता, चुपके से वह भीतर आया,
जंजीरों से जकड़-जकड़ कर, बन्दी उसने हमें बनाया।
नींद खुली, तब हमने देखा, ऐं, यह तो मेहमान वही है;
वही तराजू, बाट वही है, बिक्री का सामान वही है।
किन्तु अरे, ये तेग-तमंचे! इन्हें कहाँ से यह ले आया ?
अब समझे हम, हाय कमर में था वह उसने कभी छिपाया।
क्या करते? अब हाथ बँधे थे, भूल हुई थी हमसे भारी;
हम समझे व्यापारी, वह था कपटी, डाकू, अत्याचारी।

स्वातन्त्र्य के बाद आज फिर से वैसा ही संकट देश के सामने खड़ा है। अमेरिका के नेतृत्व में पूँजीवादी देश डंकल प्रस्ताव व अन्य समझौतों के माध्यम से अपने षड्यंत्र फैला रहे हैं। आज हम इन कपटी व्यापारियों को देश में प्रवेश न करने दें और विचार करें :

आज उसी के संगी-साथी, जहाँ-तहाँ पर लूट मचाते;
बड़े-बड़े हथियार जमा कर, दुनिया भर में रोब जमाते।
वैसे, कुछ आपस की उनमें छीना-झपटी मची हुई है;
पर यह सब तो मिलीभगत है, गोरी चमड़ी गढ़ी हुई है।
डंकल प्रस्तावों की साजिश—बँधी रहे यह दुनिया सारी;
जिनके बीज चुराये पहले, उनसे लेगा कीमत भारी।
भारत में भी यही ताकतें, गृद्ध-दृष्टि से झाँक रही हैं।
आपस में हम लड़-भिड़ जायें, ऐसा अवसर ताक रही हैं।
स्वतन्त्रता पर आया खतरा, बुद्धि-युक्ति से कर लें दूर;
करें स्वावलम्बी भारत को, लिये स्वदेशी-व्रत भरपूर।
"जो होता है होने दो जी", यह तो पौरुषहीन कथन है;
"जो हम चाहेंगे, वह होगा", यह कहने में ही जीवन है।
अपना देश, धरित्री अपनी, अपने खेत, पहाड़ जगायें,
सावधान हो घर-घर जाकर जयतु स्वदेशी नाद गुँजायें।
जयतु स्वदेशी नाद गुँजायें।

—रामशंकर अग्निहोत्री

हिन्दू अर्थशास्त्र के परिणाम

१. सबके लिए आजीविका (रोजगार)।

२. मुद्रा की बाढ़ रोकने की पक्की व्यवस्था।

३. शोषण की समाप्ति।

४. विकेन्द्रीकरण।

५. उपयुक्त प्रौद्योगिकी।

६. निर्धनता का अन्त।

७. न्यूनतम कराधान।

८. ब्याजमुक्त आर्थिक सहकार।

९. सुस्थिर आर्थिक अनुशासन।

१०. उत्पीड़नरहित सशक्त राज्य।

स्वदेशी और स्वराज्य

★ स्वदेशी केवल रोटी, कपड़ा और मकान का नहीं अपितु सम्पूर्ण जीवन का दृष्टिकोण है और स्वराष्ट्र की पहचान भी। स्वदेशी देश की प्राणवायु है, स्वराज्य और स्वाधीनता की गारण्टी है। गरीबी-भुखमरी और गुलामी से मुक्ति का उपाय है यह। स्वदेशी के अभाव में राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मानसिक स्वातंत्र्य सर्वथा असम्भव है।

— महात्मा गांधी

★ विदेशी वस्तुओं पर नजर डालने और परस्त्री पर नजर डालने में कोई अन्तर नहीं, दोनों एक जैसे घृणास्पद व्यवहार और व्यभिचार हैं।

— महात्मा गांधी

★ स्वदेश के शत्रु और स्वदेशी के शत्रु में कोई अन्तर नहीं।

— दीनदयाल उपाध्याय

★ प्रत्येक स्वयंसेवक को राष्ट्रीय वृत्ति से स्वदेशी व्रत का पालन करना चाहिए।

— संघ-संस्थापक डॉ. हेडगेवार

★ स्वदेशी स्वराज्य का अस्त्र-शस्त्र और मंत्र-तंत्र भी है। हर भारतीय का यह पहला कर्तव्य है कि वह स्वदेशी का व्रत की भाँति पालन करे।

— श्री गुरुजी

★ गुलामी के घी से आजादी की घास अच्छी।

— नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

सु प्र